वर्ष-01 अंक -03 जुलाई- सितम्बर-2023 ISSN– 2993-46484

शोध उत्कर्ष

Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research Journal

https://shodhutkarsh.com/ प्रधान संपादक -डॉ. एन.पी.प्रजापति

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research E-Journal
वर्ष-01 अंक -03 जुलाई - सितम्बर - 2023

सलाहकार मण्डल (Peer Review Committee)

प्रो. दिनेश कुशवाह,रीवा (म.प्र.)
डॉ. कन्हैया त्रिपाठी पूर्व (OSD),महामहिम राष्ट्रपति 'भारत'
प्रो. एम.यू. सिद्दीकी, सिंगरौली (म.प्र.)
डॉ.अजय चौधरी,नागपुर
डॉ. रेणु सिन्हा,रांची- झारखंड
डॉ. निशा मुरलीधरन,वड़पलनी-चेन्नई
डॉ. एस. एल. प्रजापति,रीवा (म.प्र.)
डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय सीधी-(म.प्र.)
डॉ.गोविन्द बाथम ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मोहन लाल आर्य,मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)

संपादक मंडल

प्रधान संपादक
डॉ. एन. पी. प्रजापति
संपादक
डॉ. मंजुला चौहान
कार्यकारी संपादक
डॉ. संतोष कुमार सोनकर (English)
डॉ. अवधेश प्रताप सिंह (हिंदी)

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- shodh utkasrsh@gmail.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें-
Website:–http://www.shodhutkarsh.com

दलित उत्कर्ष समिति द्वारा प्रकाशित

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research E- Journal
वर्ष-01 अंक -03 जुलाई -सितम्बर -2023

Table of Content

S.N.	Title and Name of Author(s)	Page No.
	सम्पादकीय -	3
1.	Emergence of The Women Education - **Dr.Shilpa M.Sangam**	4-5
2.	One Person Company: An Overview(A New Business Opportunity in New Companies Act 2013) - **Ramakrishna Tyapi**	6-8
3.	Green Marketing - **Miss. Vanishree.C.Talikoti**	9-11
4.	Teacher Educators: The Cornerstone of Educational Transformation—**Dr. Mohan Lal 'Arya'**	12-15
5.	हिंदी के विकास में स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान - **शांति सुमन दीपांकर & डॉ. पूनम पाण्डेय**	16-17
6.	The Transformative Role of Inclusive Education in India's Secondary Education System-**Dr.Parina Bansal**	18-22
7.	'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक में अभिव्यक्त नारी जीवन की समस्याएं - **देवानंद यादव**	23-25
8.	विन्ध्य क्षेत्र के स्वाधीनता आन्दोलन एवं साहित्य - **डॉ.अभिशिखा नामदेव**	26-27
9.	हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री की दशा - **डॉ. दीपा अंटिन**	28
10.	The Role of Special Economic Zones (SEZs) in Export Promotion of India - **Pooja Gupta**	29-32
11.	Transforming Teacher Education: The Implications of India's National Education Policy 2020 -**Dr. Rajkumari Gola**	33-37
12.	Significance of Rural Development and Government Scheems - **Kavita V. Juktimath**	37-39
13.	संवैधानिक प्रावधान एव जनजातीय विकासः मध्यप्रदेश के जनजातियों के संदर्भ में - **रामराज सिंह**	40-41
14.	जल-संकट निवारण के संदर्भ में झारखंड राज्य- गंभीर पर्यावरणीय मुद्दा - **सौरभ शुभम्**	42-44
15.	नासिरा शर्मा की कलम उन्नायिका की दस्तावेज - **रमेश प्रसाद पटेल & डॉ. अमित शुक्ला**	45-48
16.	जनजातीय विकास और राजनीतिक सहभागिता-**इन्द्र बहादुर सिंह**	48-52
17.	Embracing Continuous Innovation, Adaptation, and Learning with Risk Management Maturity Models - **Dr. Sanjay Kumar Singh**	52-56
18.	The Synergy of Human Resource Management and Information Technology - **Suchika Joshi & Dr. M. C. Sharma**	57-61
19.	इक्कीसवीं सदी की कविताओं में दलित विमर्श - **डॉ.सजिना.पी.एस**	61-62
20.	स्त्री जीवन की समस्याओं का दस्तावेज 'दक्खम सुक्खम' उपन्यास-**डॉ. सुशील कुमार**	63-65
21.	भाषा का वैज्ञानिक पक्ष और हिन्दी भाषा शिक्षण : एक विश्लेषण - **डॉ.राजेंद्र घोडे**	65-67
22.	दादूपंथी संतों के साहित्य में सामाजिक सांस्कृतिक चिंतन - **डॉ.शीतल प्रसाद महेन्द्रा**	67-70

सम्पादकीय ....

अपनी बात.....

शिक्षा किसी भी सभ्यता के अस्तित्व या आने वाली सभ्यता का सबसे शक्तिशाली पोषित लक्ष्य है। वर्तमान समय में विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही एक बेहतर और सुरक्षित नौकरी की चाह रखते हैं, क्योंकि वर्तमान में बेरोजगारी की समस्या विकसित एवं अल्प विकसित दोनों तरह की अर्थ व्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या बनती जा रही है। यह समस्या आधुनिक समय में युवा वर्ग के लिए घोर निराशा का कारण बनी हुई है। नवीन आंकड़ों के अनुसार देश की बड़ी युवा आबादी रोजगार की तलाश में है। सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि इसमें पढ़े-लिखे युवाओं की संख्या ही सबसे ज्यादा है। बेरोजगारों में 25 प्रतिशत युवा- 20 से 26 वर्ष आयु वर्ग के हैं। जबकि 27 से 30 वर्ष की आयु वाले युवकों की संख्या 17 प्रतिशत है। बिशेषज्ञों की मानें तो लगातार बढ़ती बेरोजगारी का यह आंकड़ा सरकार के लिए गहरी चिंता का विषय है। वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर केन्द्र सरकार की ओर से हाल में जारी इन आंकड़ों में महिला बेरोजगारी का पहलू भी सामने आया है। नौकरी की तलाश करने वालों में बड़ी संख्या में महिलाएं भी सम्मिलत हैं। इन सब आंकड़ों से स्पष्ट है कि बेरोजगारी देश में किस प्रकार व्याप्त है। दूसरे पहलू की बात करें तो आज की परिस्थिति में शिक्षा अब स्वंय में एक उत्पाद बन गई है, जो कि मानव संसाधन विकास के लिए अनिवार्य है, विशेषकर तकनीकी क्रान्ति के बाद इसकी संभावनाएँ और भी बढ़ गई है। संचार, इलेक्ट्रानिक, कम्पयूटर और अब आर्टिफिशियल इंटलीजेंट आदि जैसे क्षेत्रों में हुए तकनीकी विकास के लिए एक सुशिक्षित एवं प्रभावी रूप से प्रशिक्षित मानव संसाध की आवश्यकता है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए तीन बातें महत्वपूर्ण हैं– 1.शिक्षा, 2.रोजगार सम्बन्धी योग्यता और 3.रोजगार। इस सम्बन्ध में हमारी पिछली नीतियों का प्रारूप किसी चीज की ओर भागने के बजाय किसी चीज से भागने की तरह रहा है।

"आज सही एवं उचित शिक्षा से ही स्वर्णिम भविष्य सम्भव होगा।'' इस ध्येय वाक्य के सन्दर्भ में बीते दिनों कि बात करें तो 1966 में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने 1986 तक सकल राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत प्रति वर्ष शिक्षा पर व्यय करने की सिफारिश की थी, परन्तु सकल राष्ट्रीय आय में वास्तविक विकास दर 1965-66 से 1985-86 तक मात्र 3.97 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सीमा ही छू सकी। इस वर्ष 2023 के बजट पर केन्द्रीय शिक्षा मंत्री जी ने ट्वीट कर स्पष्ट किया था कि अभी तक शिक्षा के मद में यह सबसे बड़ा व्यय होगा, जो भारत वर्ष को 'ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था बनाएगा।' नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस व्यय को सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत करने का भी वादा था, परन्तु पिछले चार वर्ष से शिक्षा पर केवल 2.9 प्रतिशत ही खर्च हो रहा है जो सन् 2013-14 में 3.10 प्रतिशत था। इस राशि में अब तक की सबसे बड़ी वृद्धि इसलिए अहम नहीं है क्योंकि पिछले सात दशक से प्रतिवर्ष सकल घरेलू उत्पाद हो या बजट. यह राशि बढ़ती ही रही है। सच यह है कि प्रतिशत के रूप में भी पिछले कुछ वर्षो में कुल व्यय में शिक्षा पर खर्च घटता रहा है। किसी भी समाज के आर्थिक विकास के दो मूल भूत आधार होते है- स्वास्थ्य और शिक्षा। स्वास्थ्य के पैरामीटर्स पर स्वंय सरकार मानती है कि गरीबों की जेब से भी स्वास्थ्य के मद में पहले से ज्यादा खर्च हो रहा है और राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 भी कहता है कि 90 प्रतिशत बच्चे पोषक तत्वों की न्यूनतम स्वीकार्यता सीमा से नीचे हैं। उच्च शिक्षा में एनरोलमेंट तो वर्ष 2013-14 में 24.3 प्रतिशत के मुकाबले 2020-21 में 27.3 प्रतिशत बढ़ा है, लेकिन प्रश्न उठता है कि क्या यह रीति-नीति और गति ठीक है? और क्या जो शिक्षा दी जा रही है और दी जाएगी वह आर्टिफिशियल इंटलीजेंट के दौर में तार्किक वैज्ञानिक सोच विकसित करने तथा मानवीय मूल्यों को विकसित करने में सक्षम होगी? ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने में आज राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सक्षम दिख रही है, जो कि शिक्षा को पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने,के अतरिक्त न्यायसंगत और समता मूलक समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढावा देने के लिए शिक्षा की मूलभूत आवश्यकताओं की बात करती है साथ ही साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना, वर्तमान नयी शिक्षा निति को वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के संदर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी माना है।

****

दिनांक –02.10.2023 **-प्रो. मोहन लाल 'आर्य'**

Emergence of The Women Education

Dr.Shilpa M.Sangam
Dept of Women's Studies
Akkamahadevi Women's College Bagalkot

Introduction :-

It is believed that when you educate a man you educate an individual but when you educate a woman you educate a family. The development of a nation cannot only be assured through the technological and materialistic advances, but through the quality of life. According to Aristotle, to educate means, today developments facilities especially his mind, so that one can acquire some political,economic, cultural and socio- economic status in the society. Education has been recognised as a major instrument for vertical mobility and help in equalizing status among different social Strata. In the process of social change, education please very significant role. In every developing society the degree of development depends upon a degree of education system. The famous Bengali poet Rabindranath Tagore mentioned -" if we do not spread female education, the harmony between husband and wife will be destroyed in modem educated Indian society". Thus women's education can also bring changes in decision making and participation in every field of life.

In India, we have different views regarding women and their position in society. In earlier times on the one hand women were respected while on the other hand, they were considered non-independent and human beings protected by their fathers when young, by their husbands in their youth and by their sons in their old age. Traditional India had also seen a woman only as a member of the family group as a daughter wife and mother and not as an individual with an identity or right of her own.
Gradually with the growth of modernization, urbanization,industrialisation and rising prices women began to come out of the Laxman Rekha of their house and work outside for wage or salary.

The special provisions for women in the Indian constitution were the result of the social reform movement which began in the 19th century emphasizing the improvement of women's status.

Social reformers like Raja Ram Mohan Roy resorted against Hindu customs such as Sati polygamy child marriage and the caste system. Arya Samaj in Punjab and Jyoti Rao Phule established Schools for Girls in Maharashtra. In Patna and Kolkata Begum RokeyaShekhawat Hussain started schools for Muslim girls. Slowly with the support from reformers, Oman started entering University for higher education.

According to Mahatma Gandhi, if you educate a man you educate an individual but if you educate a woman you educate an entire family.

Dr. Ambedkar thought unity is meaningless without the accompaniment of education is fruitless without educated women and agitation is incomplete without the strength of women.

Empowerment envelopes developing and building capacities of individuals, and communities to make them part of the mainstream society. Education is the only means by which societies grow out of opposition to democratic participation and involvement. it is a powerful tool for the empowerment of individuals.Agreed the nose substantial change could be achieved as long as women are deprived of opportunities for self-development and participation. By recognising the unequal social position of women, the constitution of India guarantees several rights for women in its articles - 14, 15(1),15(3)1,16,39 (9),39(D), 243 (D)3, 243 D(4) 243 T(3).

The international committee has recognised equal Rights to quality education for everyone and is committed to achieving gender equality in all fields. Including education through their acceptance of international human rights law. This means that States have legal obligations to remove all discriminatory barriers. Whether they exist in law or everyday life, and to Undertaker positive measures to bring about equality,including in access to within and through education.

The Convention on the Elimination of all Forums of Discrimination against Women 1970 (CEDAW)is the only legally binding Treaty at the international level focusing exclusively on women's rights. It interprets and applies the right to education in a way that considers the specific needs and circumstances of women.

Article 10 of CEDAW is the most comprehensive provision on women's and girl's right to education in international law. RTE Act 2009 States education is a fundamental right of every child.

The status of women in India can be improved only by empowering women socio-economically, women empowerment is a multidimensional process. which enables the women individually all collectively to release their full identity and powers in all Spears of life. it consists of gender greater access to knowledge and resources. Greater autonomy in decision-making, enables

them to have a greater ability to plan their lives by avoiding customs, beliefs and practices of the society.Researchers in the field of women's education show that in families where the women are educated, social evils such as illiteracy of girl children, child labour, early marriage and other superstations are much less.

To ensure better participation of women in the development process of the nation. The entire population is to be involved to create a sense of awareness about values and the need to empower women through quality education.

The status of women in many parts of our country is very low as theyare denied all privileges including education. This has led to the failure of the efforts put in by the government to achieve total adult literacy. The overall literacy rate increased from 18.3% in 1951 to 65.38% in 2001. Where the female literacy rate accounted for 5416%. The highest literacy rate is in Kerala i.e. 90.92% and the lowest is in Bihar i.e. 47.53%. Ground report New Delhi States with good women literacy rate literacy level and educational attainment are vital indicators of development in a country. India's literacy rate is 77.70% as the rate of literacy for men and women stands at 80.40% and 71.50% respectively as per the data of the national family health survey. Interestingly, femal…

The government launched the National Literacy Mission(NLM) to achieve total adult literacy in 1988 among 80 million adults in the age group of 15 to 35 years by 1995, the target was furthered in 1998 to 1999 to benefit 100 million adults by 2005 evening school or improve imparting education those peoplewho find it difficult to attend formal schools because of their occupations. To further their education they could For furthering their education they could seek admission into the open school or National Open School. The Indira Gandhi National Open University (IGNOU) was set up in 1985 to provide degree programs along with occasional education under the distance education scheme.

There has been a rapid program in girl's education since independence. The enrollment ratio of girls to total enrollment during 1992- 93 was 43% at the primary stage. Steps have been taken by the government through some new programs like DPDS, SSA, EGS etc.to achieve the goals of universalization of elementary education.

The gross women enrollment in higher education was less than 10% at the time of independence and it has increased to 39.84%. That is 35, 14,450 out of the total enrollment of 8821095 in 2001 -2002. The percentage of female enrollment two total enrollment has increased from 45% in 2014-15 to around 49% in 2020 -21.

Importance of women's education:-Education makes humans more confident and ambitious. They become more aware of their rights and can raise their voice against exploitation and violence. Some of the advantages of educating women and its positive effect on the society

1. **Better standard of living**
2. **Improvehealth and hygiene**
3. **Dignity and Honour**
4. **Self Reliance**
5. **Eliminating crime against women.**
6. **Decreased mortality rate**
7. **Prevent social exclusion of women**
8. **Integral development**
9. **Exploring the hidden potential**
10. **Women and politics or bureaucracy.**

Educating women is integral to the economic and social development of a nation. Women play a responsible role in the houses and societies. They are responsible for looking after their children relatives and elders of the house which makes it mandatory for them to be well informed and aware of threats and security.

Conclusion:-

Study the women of today have to prioritise home and workplace. As both are of equal demand the indispensable support of their husband and children enables them to maintain balance in both words. It is found that women are more determined and committed towards family. Education and professional hands parents should not create a gender bias between their children. Educated girls are also known to support their parents in their old age when their brothers fail to do so. Does education of the women mean the emancipation of women and the social development of the nation?

****

References :

1. Women Education : Emerging Issues and Rethinking . Jogesh Chandra Pati, Rajan Kumar sahoo,Hariballar Dash. Mittal Publication - 2008.
2. Women's Education in India. Historical Review Perspective plan with statistical indicators, Agarwal S.P- Agarwal S.P- Agarwal J.C Gyan publishing house,New Delhi.1993.
3. Women Education , Siddqui M.H , Ashish publishing house, New Delhi.1993,Reprint-2005
4. Women Education and Empowerment, Aruna Sharma, J.C.Sharma, Rita Bakshi, Poonam Sharma,Om Publication , New Delhi-2006

One Person Company: An Overview

(A New Business Opportunity in New Companies Act 2013)

Ramakrishna Tyapi
Assistant Professor
Dept. of Commerce
Basaveshwar Commerce College, Bagalkot.

ABSTRACT: *A person can set up and run a company called "One Person Company (OPC)", which was introduced under the Companies Act, 2013 by the enactment of the Companies (Organization) Rules, 2014. Many concepts were introduced in companies act 2013 one of the important concept in that One Person Company. Under the formation of such OPCs any individual resident person of India can form a company on their own. OPC is similar to the concept of Sole-proprietorship with separate legal entity. OPC provides full freedom to entrepreneurs to contribute in the economic activities. This paper is an attempt to discuss a few aspects and overview the core contents of One Person Company.*

Keywords: OPC, Companies Act 2013, One Person Company.

INTRODUCTION: The Companies Act 2013 regulates the formation and functioning of corporations or companies in India. The 1956 Act was based on the recommendations of the Bhabha Committee. This Act was amended multiple times, and in 2013, major changes were introduced. The new law is aimed at easing the process of doing business in India and improving corporate governance by making companies more accountable. The 2013 Act also introduces many new concepts one of which was the Person Company.

One of the important introductions brought by the Companies Act, 2013 is the concept of 'One Person Company' (OPC). OPC is defined in Section 2 (62) of The Companies Act, 2013, which reads as follows: "One Person Company means a company which has only one member" Such companies are generally created when there is only one founder/promoter for the business. One person company is similar to the concept of Sole-proprietorship with separate legal entity. It provides opportunity to small business enterprise with the advantages of company.

The Government of India constituted an expert committee on company law on 2 December 2004 under the chairmanship under the chairmanship of Dr. J J Irani, Director, Tata Sons, with the task of advising the Government on the proposed revisions to the Companies Act, 1956. On the basis of the committee had suggested that such an entity may be provided with a simpler legal regime through exemptions so that the small entrepreneur is not compelled to devote considerable time, energy and resources on complex legal compliance. Thus, the concept one person Company was recognized in Companies Bill, 2009 which came after the submission of report by J.J. Irani Committee. The Companies Bill, 2009 was later considered as Companies Bill, 2011. This bill became Companies Act, 2013 after it was passed by the Parliament. The concept of OPC was given statutory recognition by this Act of 2013.

Till 31.08. 2022 a total number of 45577 One Person Companies were active with a collective paid up capital of Rs. 607.41 core.[(2)]

SALIENT FEATURES OF ONE PERSON COMPANY:

- **Private company:** Section 3(1) (c) of the Companies Act says that a single person can form a company for any lawful purpose. It further describes one-person company will be treated as a private company for all the purposes of legal nature
- **Single-member:** One Person Company can have only one member or shareholder, unlike other private companies.
- **Naming of OPC:** Section 12 of the Companies Act, 2013 deals with naming of a company, that is, whether it is a public company or a private company, it should be mentioned wherever the name of the company is used. The same is in the case of One Person Company as well, that is, under the name of the company, 'One Person Company' or OPC should be written in brackets.
- **Nominee**: A unique feature of One Person Company that separates it from other kinds of companies is that the sole member of the company has to mention a nominee while registering the company.
- **No perpetual succession:** Since there is only one member in a One Person Company, his death will result in the nominee choosing or rejecting to become its sole member. This does not happen in other companies as they follow the concept of perpetual succession means continuous existence of the company.
- **Minimum one director:** Every company shall have directors. Minimum of two directors in case of private company and minimum of three directors in

case of public company. One Person Company need to have minimum one person (the member) as director. They can have a maximum of 15 directors. The member of the company shall be its first director which shall also be mentioned in MoA.

- **Minimum paid-up share capital:** The minimum capital required to start up with One Person Company is Rs. 1,00,000/-
- **Special privileges:** One Person Company enjoy several privileges and exemptions under the Companies Act that other kinds of companies do not possess. Ex: They do not have to hold annual general meetings. Etc.,

COMPARISON OF ONE PERSON COMPANY WITH OTHER FORM OF COMPANIES.

Features	One Person Company	Sole Proprietorship	Private Company
Name	Words "One Person Company" or opc. must be mentioned in brackets below the name of the company	Any name without contravening legal provisions of other forms of entrepreneurship	Words "Private Company" or pvt., ltd. must be mentioned at the end of the name of the company
Capital	Minimum – ₹. 1 Lakh Maximum – ₹. 50 Lakh	Minimum – No Limit Maximum – No Limit	Minimum – ₹. 1 Lakh Maximum – No Limit
Number of Member / Shareholder	Minimum – 1 Maximum – 1	Does not arise	Minimum – 2 Maximum – 200
Number of Directors	Minimum – 1 Maximum - 15	No provision for director	Minimum – 2 Maximum - 15
Nominee	Mandatory to mention the name of one nominee	Does not arise	Does not arise
Transfer of Shares	No transfer of shares	Does not arise	Transfer of shares restricted
Residential Status of Shareholder(s)	Must be Resident of India	Does not arise	May or May is not Resident of India
Separate Entity	Legal Separate Entity exists	Does not arise	Legal Separate Entity exists
Succession	Perpetual Succession Provision in the law	No Perpetual Succession Provision in the law	Perpetual Succession Provision in the law
Registration	Mandatory Registration with ROC	Registration not required with ROC	Mandatory Registration with ROC
Quorum for Meeting	No Quorum	Does not arise	2 members

PRIVILEGES OF ONE PERSON COMPANIES:

One Person Company enjoy the following privileges and exemptions under the Companies Act:

- Meetings: They do not have to hold annual general meetings.
- OPC does not requirement of preparing cash flow in the annual financial statements.
- Annual returns: A company secretary is not required to sign annual returns; it means that the Director himself can be signed annual returns instead of a company Secretary.
- Provisions relating to independent directors do not apply to them.
- Their articles can provide for additional grounds for vacation of a director's office.
- Several provisions relating to meetings and quorum do not apply to them.
- They can pay more remuneration to directors than compared to other companies.

Requirement for Registration of One Person Companies:

- Minimum and maximum of one member.
- The name of the OPC must be selected as per the provisions of the Companies (Incorporation Rules) 2014. And

should mention as OPC in bracket at the end of the name.
•A nominee name should mention before incorporation.
•The Memorandum of Association (MoA) and the Articles of Association (AoA) of the OPC have to be written out and submitted to the Registrar.
•The minimum authorized capital must be at least Rs 1 Lakh
•OPC should have its own registered office with address.
•The documents required to be furnished for the incorporation of OPC are required to be signed digitally and submitted to the Registrar.
•All other legal documents like Aadhar, PAN etc.,

Process of Incorporation / Registration of One Person Company (OPC)

- Registration is mandatory and know that along with the requirements of an OPC.
- The first step is to apply for Digital Signature Certificate [DSC] with the required documents like Aadhar Card, PAN (Permanent Account Number), etc
- An Application for DIN (Director Identification Number) is to be made, which is mandatory for the directors of the OPC.
- Select suitable Company Name, and make an application to the Ministry of Corporate Affairs for availability of name and get approved.
- Draft Memorandum of Association and Articles of Association.
- Sign and file various documents including MOA & AOA, the form INC 3, Address Proof of the registered office and declaration and consent of the directors with the Registrar of Companies electronically.
- All the required forms and documents are uploaded to the MCA portal with the director's DSC.
- Payment of fee and stamp duty to the Ministry of Corporate Affairs.
- The registrar verifies all the documents submitted and he also checks the receipt of fees deposited.
- Issue of Certificate of Incorporation - If the registrar of the company satisfied with the validity and authenticity of the documents, then he enters the name of the company in the register and issue the certificate of incorporation along with the PAN and TAN (Tax Deduction Account Number).

Who cannot become a member of an OPC or ac as Nominee in OPC?

◊ Minor.
◊ Foreign citizen.
◊ Non Resident.
◊ A person incapacitated to contract.
◊ A person other than a natural person.

Conclusion:-

One Person Company is a new business concept for the Indian Market but still it has gain an excellent response within 9 years. The important advantage of OPC is a single person can start a business without fear of unlimited liability. OPC gets the advantages of sole proprietorship and a company both at one time. OPC helps the people who are in to small business or self-employment sector and gives many opportunities to start a small business with limited liability to the individual. The success of OPC is purely dependent upon its implementation but the concept is a necessity in the changing business area of the country where entrepreneurs are require taking risk & at the same time needs protection to cover up that risk. It is still in its developing stage in India and would require some more time to mature and to be fully accepted by the business world. With the passage of time, the OPC mode of business organization will be all set to become the most preferred form of business organization, especially for small entrepreneurs.

****

References:

1. Companies Act,2013
2. https://www.taxmanagementindia.com/visitor/detail_article.asp?ArticleID=10750#:~:text=619-,One%20Person%20Companies,607.41%20crore.
3. Bhavna P. Patel, One person Company: Recent trends in Business, e ISSN 2348 –1269, IJRAR Impact Factor VOLUME 3| Issue: 1 | JAN. – MARCH 2016. I ISSUE 1 I
4. https://www.toppr.com/guides/business-laws/companies-act-2013/one-person-company/
5. https://taxguru.in/company-law/one-person-company-opc-benefits-legal-status-exemptions.html
6. RUCHITA DANG, One Person Company: Concept, Opportunities & Challenges in India. International Journal for Research in Management and Pharmacy/ Vol. 4, Issue 3, April: 2015.
7. Prasanta Kumar Dey, One-Person Company a New Business Opportunity in New Companies Act: A Panorama. /International Journal of Advance Research and Development/ (Volume3, Issue3)

Green Marketing

Miss. Vanishree.C.Talikoti
Lecturer Department of Commerce
B.V.V.S Akkamahadevi Women's Arts, Science and Commerce College Bagalkote

Abstract
Organizations are Perceive Environmental marketing as an Opportunity to achieve its objectives. Firms have realized that consumers prefer products that do not harm the natural environment and human health. Firms marketing such green products are preferred over the others along with develop a competitive advantage, simultaneously meeting their business objectives. Organizations believe they have a moral obligation to be more socially responsible. This is in keeping with the philosophy of CSR which has been successfully adopted by many business houses to improve their corporate image for examples APPLE ,PATAGONIA, STARBUCKS. etc
This paper will attempt to introduction ,importance of the green marketing this concept which has developed particular importance in the modern marketing recently concerns have been expressed by manufactures and customers about the environmental impact of products. Indian marketers are also releasing the importance of green marketing concept.
KEY WORDS : Environment and human health consciousness, CSR, Green marketing

Introduction:
Green marketing is a new concept which has developed particular importance in the modern market. Green marketing is the marketing of products that are presumed to be environmentally safe. Smart business houses have accepted green marketing as a part of their strategy. Though our understanding about green marketing still in the stage of infancy, Green marketing, also alternatively known as environmental marketing and sustainable marketing, it refers to an organization's efforts at designing, promoting, pricing and distributing products that will not harm the environment; examine some reasons that make the organizations interested to adopt green marketing philosophy; it also highlights some problems that organization may the face to implement green marketing and it's managerial implications along with few case points.

What is Green marketing and evolution of Green marketing:
•Green marketing consists of all activities designed to generate and facilitate any exchange s intended to satisfy human needs or wants ,Such that satisfaction of those needs and wants occurs ,with minimal detrimental impact on the natural environment. According to American marketing association marketing of product that are presumed to be environmentally safe is called as green marketing .thus wide range of activities are covered under green marketing
•Modifying the product
•Making changes in the production process and packages.
•Modifying advertising or removing any activity that impacts the environment in negative way.
Unfortunately, a majority of people believe that green marketing refers solely to the promotion or advertising of products with environmental characteristics. Terms like Phosphate Free, Recyclable, Refillable, Ozone Friendly, and Environmentally Friendly are some of the things consumers most often associate with green marketing. While these terms are green marketing claims, in general green marketing is a much broader concept, one that can be applied to consumer goods, industrial goods and even services. Thus green marketing incorporates a broad range of activities, including product modification, changes to the production process, packaging changes, as well as modifying advertising. Yet defining green marketing is not a simple task. Indeed the terminology used in this area has varied, it includes: Green Marketing, Environmental Marketing and Ecological Marketing. While green marketing came into prominence in the late 1980s and early 1990s, it was first discussed much earlier. The American Marketing Association (AMA) held the first workshop on "Ecological Marketing" in 1975. The proceedings of this workshop resulted in one of the first books on green marketing entitled "Ecological Marketing" [Henion and Kinnear 1976a]. Since that time a number of other books on the topic have been published [Charter 1992, Coddington 1993, Ottman 1993]. The AMA workshop attempted to bring together academics, practitioners, and public policy makers to examine marketing's impact on the natural environment.
First phase was termed as "**Ecological"** green marketing, and during this period all marketing activities were concerned to help environmental problems and provide remedies for environmental problems.
Second phase was **"Environmental"** green marketing and the focus shifted on clean technology that involved designing of innovative new products, which take care of pollution and waste issues.
Third phase was "**Sustainable**" green marketing. It came into prominence in the late 1990s and early

2000concerned with developing good quality products which can meet consumers need by focusing on the quality, performance, pricing and convenience in an environment friendly way.

Characteristics Of Green Products:-We can define green products by following measures:

1. Products those are originally grown.
2. Products those are recyclable, reusable and biodegradable.
3. Products with natural ingredients.
4. Products containing recycled contents and non toxic chemical.
5. Products contents under approved chemicals.
6. Products that do not harm or pollute the environment.
7. Products that will not be tested on animals.
8. Products that have eco-friendly packaging i.e. reusable, refillable containers etc.

Objectives of the paper

1. To know the concept of green marketing.
2. To identify the importance and need of green marketing.
3. To study the challenges and prospects of green marketing.

Why are firm go Green Marketing:-Firms may choose to green their systems, policies and products due to economic and non economic pressures from their consumers, business partners, and other stakeholders

1) Opportunity:-A demand changes, many firms see these changes as an opportunity to exploit and have a competitive advantage over firms In India, now a days consumers prefer environment friendly products, and they may be considered health conscious.

2) Social Responsibility:-Now a days organizations are becoming more concerned about their social responsibilities .They have taken it is as a good strategic move to build up an image in the heart of consumers. They must behave in an environment friendly fashion. They believe both in achieving environmental objectives as well as profit related objectives respecting the principle of Extended Producer Responsibility

3) Change in Customer attitude:-Change in customer attitude with increasing concern about environment, consumers attitude towards firms having green policies or green products are becoming motivating factor.

4) Cost / Profit Issues :-Firms may also use green marketing in an attempt to address cost or profit related issues it means control over the cost associated with waste disposal therefore firms that would able to introduce green-marketing by not inculcating or lesser use of harmful ingredients would able to reduce it's operating cost to an considerable extend

5) Government Pressure :-As with all marketing related activities, governments want to "protect" consumer and society; this protection has significant green marketing implications. Government regulations relating to environmental marketing are designed to protect consumers in several ways, Reduce production of harmful goods or by-products Modify consumer and industry's use and/or consumption of harmful goods Ensure that all types of consumers have the ability to evaluate the environmental composition of goods. Government establishes regulations designed to control the amount of hazardous wastes produced by firms.

6) Competitive Pressure:-Competition is the integral part of business; and you can not over-look any competitive action taken by your competitor. So to be in the market you have to watch over on your competitor's move for marketing it's products. Some firms has taken green-marketing as a strategy to build up it's image rather than inculcate it as a part of the policy and work silence. In some instances this competitive pressure has caused an entire industry to modify and thus reduce it's detrimental environmental behavior.

Challenges of Green marketing:-Implementing Green marketing is not going to be an easy job. The firm has to face many problems while treading the way of Green marketing. Challenges which have to be faced are listed as under:

Eco Lebeling.:-The customers may not believe in the firm's strategy of Green marketing, the firm therefore should ensure that they convince the customer about their green product, this can be done by implementing Eco-labeling schemes. Eco-labeling schemes offer its "approval" to "environmentally less harmless" products have been very popular in Japan and Europe. In fact the first eco-label programme was initiated by Germany in 1978.

Need for Standardization:-It is found that only of the marketing messages from "Green" campaigns are entirely true and there is a lack of standardization to authenticate these claims. There is no standardization currently in place to certify a product as organic. Unless some regulatory bodies are involved in providing the certifications there will not be any verifiable means. A standard quality control board needs to be in place for such labeling and licensing.

New Concept:-Indian literate and urban consumer is getting more aware about the merits of Green products. But it is still a new concept for the masses. The consumer needs to be educated and made aware of the environmental threats. The new green movements need to reach the masses and that will take a lot of time and

effort. By India's ayurvedic heritage, Indian consumers do appreciate the importance of using natural and herbal beauty products. Indian consumer is exposed to healthy living lifestyles such as yoga and natural food consumption. In those aspects the consumer is already aware and will be inclined to accept the green products.
Patience and Perseverance

The investors and corporate need to view the environment as a major long-term investment opportunity, the marketers need to look at the long-term benefits from this new green movement. It will require a lot of patience and no immediate results. Since it is a new concept and idea, it will have its own acceptance period.

High price

Many customers may not be willing to pay a higher price for green products which may affect the sales of the company. This thing also effects the profits of company

Benefits of Green marketing

Green marketing campaigns allow companies to get the following benefits:

• This will increses the image of the company in society;
• This will form friendly relations with public organizations and with state and local government bodies;
• This will promote the renewal of the products, its improvement, and environmentalization;
• This will give an opportunity to enter foreign markets.
Using less energy and redusing green house gas emissions.

Two Examples of Green marketing Brands

Patagonia :-It contributes to climate change and it concentrate and make their goods more environment friendly. The jackets shells are made of fossil fuels. The common threads recycling program is also companies effective environmental programme.patagonia has maintained "outstanding" ratingas a certified B corporation(151) .according to the fashion transparency index. Which conducted an audit of the ventura ,California,company in 2020,it received a 60 % approval rating (the average score is 23%)

Apple

Apple produced the goods were 100% recyclable in the year 2019, in 2021 ,about 20% of the material used in apple products was recycled ,the highest ever use of recycled matirials in its 2022 environmental progress report**.**

Conclusion:-

Green marketing or green products are protecting the environment as well as educating the society on how to protect the environment and it is an essential tool in influencing consumption patterns towards responsible behavior in relation to the environment. Achieving greater environmental performance, however, requires getting beyond product orientation and labels, and using all available tools of traditional marketing – price, communication and distribution. Only this way, green marketing can be used as a source of competitive advantage.

****

References-

1) Green Marketing In India: Importance and Challenges. Retrieved from https://www.ukessays.com/essays/management/green-marketing-in-india-managementessay.php 1

2) Green Marketing Definition - What is Green Marketing. Retrieved from https://www.shopify.in/encyclopedia/green-marketing

3) Green Marketing: Meaning and Importance of Green Marketing. (2015, April 15).

4) Retrieved from https://www.yourarticlelibrary.com/marketing/green-marketing-meaningand-importance-of-green-marketing.

5) J.A Ottman, et al, "Avoiding Green Marketing Myopia",Environment, Vol-48, June-2006

6) www.greenmarketing.net/stratergic.html

7) www.goggle.com

8.Mrs. P.Anitha, Dr.C.Vijai. Ph.D Research Scholar, Department of Commerce, St.Peter's Institute of Higher Education and Research, Tamil Nadu, India, anithasaravanan27@gmail.com Assistant Professor, Department of Commerce, St.Peter's Institute of Higher Education and Research, Tamil Nadu, India, vijaialvar@gmail.com European Journal of Molecular & Clinical Medicine ISSN 2515-8260 Volume 7, Issue 11, 2020 3014 Green Marketing: Benefits and Challenges.

9.Michael Jay Polonsky Department of Management, University of Newcastle, Newcastle NSW 2308, Australia. TEL: 61(49)216-911. Fax:61(49) 216-911. An Introduction To Green Marketing

Teacher Educators: The Cornerstone of Educational Transformation

Dr. Mohan Lal 'Arya'
Professor
Department of Education,IFTM University, Moradabad

Abstract:-In the dynamic realm of education, teacher educators are often underappreciated despite their pivotal role in shaping the future of teaching and learning. This article sheds light on the multifaceted contributions of teacher educators in the context of the evolving educational landscape. As education undergoes rapid transformation driven by technology, globalization, and the changing needs of learners, teacher educators serve as mentors and role models, promoting inclusivity and diversity, conducting research, and fostering innovation. They inspire the next generation of educators to be adaptable, reflective, and equipped to meet the demands of the 21st century. Recognizing their significance and investing in their professional development are essential steps toward ensuring a strong foundation for ongoing educational transformation.

Key Words: Teacher educator, Transformation, Research, Innovation, Inclusivity and Diversity.

Introduction:-In the realm of education, the role of teacher educators is often overshadowed by the prominence of classroom teachers and administrators. However, these unsung heroes play a pivotal role in shaping the future of education. Teacher educators are the architects of pedagogical innovation, the mentors of aspiring teachers, and the guardians of educational quality. Their influence ripples through the educational landscape, and they are, indeed, the cornerstone of educational transformation.

The Changing Landscape of Education:-In recent years, the landscape of education has undergone a profound transformation. Rapid advancements in technology, shifting societal values, and the need for more inclusive and equitable education have all contributed to this change. The traditional paradigms of teaching and learning no longer suffice, and the role of educators must evolve to meet the demands of the 21st century. The landscape of education has been undergoing rapid evolution for several decades, with the COVID-19 pandemic acting as a significant accelerator of change. Multiple key factors have contributed to this transformation:

Technology Integration: Technology has seamlessly woven itself into the fabric of education. The widespread availability of computers, tablets, smartphones, and high-speed internet access has profoundly altered the learning experience. Online learning platforms, digital textbooks, and educational apps have become ubiquitous, while virtual reality (VR) and augmented reality (AR) are creating immersive learning environments.

Online Learning: The COVID-19 pandemic triggered a substantial shift towards online learning. Educational institutions, from K-12 schools to universities, were compelled to swiftly adapt to remote learning environments. This shift emphasized both the advantages and challenges of online education, sparking ongoing discussions about its role in the future of learning.

Blended Learning: Blended learning, which fuses in-person and online instruction, has gained traction. It offers flexibility in learning and caters to diverse learning styles. Moreover, blended learning models foster the development of digital literacy skills, which are increasingly crucial in the modern workforce.

Personalized Learning: Technological advances and data analytics have paved the way for personalized learning experiences. Educational platforms can analyze students' performance and customize instruction to meet individual needs. This approach aims to enhance student engagement and achievement.

Project-Based Learning: Project-based learning (PBL) has risen in prominence as an effective pedagogical approach. It emphasizes hands-on, collaborative projects that nurture critical thinking, problem-solving, and creativity. PBL enables students to apply their knowledge in real-world contexts.

Globalization: Education has transcended borders, becoming increasingly globalized. Students can connect with peers and access resources from across the globe through online platforms. This globalization has fostered greater cultural exchange and exposure to diverse perspectives.

Alternative Credentials: Traditional degrees are no longer the sole avenue to education and career success. Alternative credentials, such as micro credentials, certificates, and digital badges, have gained recognition as valid indicators of skills and knowledge. These credentials often offer greater flexibility and accessibility than traditional degrees.

Lifelong Learning: The concept of lifelong learning has gained traction. In today's fast-paced world, individuals must continually update their skills and knowledge to remain competitive in the job market. Online courses and platforms like Massive Open Online Courses (MOOCs) have democratized lifelong learning.

Inclusivity and Accessibility:

Efforts are underway to make education more inclusive and accessible to all learners. This includes addressing issues of digital

equity, accommodating students with disabilities, and recognizing the diverse needs of students from various backgrounds.

Assessment and Credentialing: The digital age has prompted ongoing debates on how to assess and credential learning. Traditional testing methods are being complemented by performance-based assessments, e-portfolios, and other innovative evaluation approaches.

Teacher Professional Development: Educators are adapting to the changing landscape through continuous professional development. They are acquiring skills in utilizing technology, engaging students in virtual and hybrid settings, and creating inclusive learning environments.

Government Policy: Education policies are evolving to align with these changes. Governments are investing in technology infrastructure, promoting digital literacy, and revising curriculum standards to meet the demands of the 21st century.The landscape of education is in a state of constant transformation, driven by technology, globalization, and the evolving needs of learners and the workforce. These changes present both challenges and opportunities for educators, institutions, and policymakers as they strive to provide high-quality, accessible, and relevant education in an ever-changing world.

Mentors and Role Models

Teacher educators serve as mentors and role models for aspiring teachers. They not only impart knowledge but also instill values, ethics, and a sense of purpose in their students. Effective teacher educators inspire their learners to be lifelong learners themselves, fostering a culture of continuous improvement in education. Through their guidance, teacher educators help pre-service teachers develop a reflective practice. This reflection, in turn, enables teachers to adapt to the diverse needs of their students, apply evidence-based teaching strategies, and engage in professional development throughout their careers. The impact of a skilled teacher educator extends far beyond the classroom; as their students go on to shape the educational experiences of countless children and young adults. Mentor and role models are essential contributors to personal and professional growth, offering inspiration, guidance, and valuable insights to help individuals achieve their objectives and navigate life's challenges. Below is an exploration of what mentors and role models represent and the distinctions between them:

Mentors:

Definition: Mentors are individuals who actively provide guidance, advice, and support to those with less experience or expertise in a particular domain. Typically, mentors possess more knowledge and experience in a specific field or area.

Role: Mentors play a pivotal role by offering tailored guidance, sharing their expertise, and providing constructive feedback. Their aim is to assist their mentees in personal and professional growth.

Relationship: Mentorship often involves a structured or informal connection between the mentor and mentee, wherein the mentor actively invests time and effort in fostering the mentee's development.

Interaction: Mentors engage in one-on-one interactions with their mentees, fostering in-depth discussions and delivering customized advice.

Goals: The primary objective of mentorship is to facilitate the mentee's growth, skill development, and self-assurance, ultimately enabling them to reach their full potential.

Role Models:

Definition: Role models are individuals who serve as exemplars to others, drawing admiration based on their behavior, accomplishments, and qualities. They may not necessarily have a direct, personal relationship with those they influence.

Role: Role models inspire and motivate others through their actions, values, and character. They embody the qualities and achievements that others aspire to attain.

Relationship: Role models may not have a personal connection with those they inspire; people often look up to them from afar, drawing inspiration from their examples.

Interaction: Role models may not actively engage with those they inspire; their influence is often passive, emanating from their public presence or notable accomplishments.

Goals: Role models, whether intentionally or unintentionally, set examples for others to emulate. Their impact lies in the inspiration and motivation they provide.

Mentors are actively engaged in guiding and nurturing the growth of others, while role models serve as sources of inspiration and aspiration. It is important to note that individuals can have multiple mentors and role models throughout their lives, each contributing uniquely to their personal and professional development. Both mentors and role models are invaluable sources of support and guidance on the path to achieving personal and professional success.

Promoting Inclusivity and Diversity: One of the most critical aspects of educational transformation is the promotion of inclusivity and diversity. In an increasingly interconnected world, teachers must be equipped to work with students from diverse backgrounds,cultures, and abilities. Teacher educators play a vital role in this process by fostering cultural competence and equity in their students. Promoting inclusivity and diversity is crucial for constructing a more equitable and just society, fostering innovation, and establishing flourishing communities and organizations. Here are several strategies and steps that individuals,

businesses, educational institutions, and governments can employ to champion inclusivity and diversity:

Educate Yourself: Begin by educating yourself about various cultures, identities, and perspectives. Read books, articles, watch documentaries, or participate in workshops centered around diversity and inclusion topics. This will facilitate a deeper understanding of these issues.

Acknowledge Bias: Acknowledge that everyone possesses biases, whether implicit or explicit. Self-awareness is the primary step toward addressing these biases and becoming more inclusive.

Create Inclusive Policies: If you hold a position of influence, such as a business owner or manager, institute and enforce policies that uphold diversity and inclusion. This can encompass anti-discrimination policies, equal pay for equal work, and flexible work arrangements.

Diverse Hiring Practices: Implement inclusive hiring practices that prioritize skills and qualifications over biases. Consider adopting blind resume reviews and diverse interview panels.

Inclusive Language: Exercise mindfulness regarding the language you employ in both written and verbal communication. Employ inclusive language that demonstrates respect for people's identities and backgrounds.

Promote Employee Resource Groups (ERGs): Encourage the establishment of ERGs within your organization. These groups provide a secure space for employees with similar backgrounds or identities to exchange experiences and offer support to one another.

Training and Workshops: Deliver diversity and inclusion training for both employees and leadership. These programs can enhance awareness of bias, nurture empathy, and cultivate a more inclusive workplace.

Mentorship and Sponsorship Programs: Create mentorship and sponsorship programs connecting employees from underrepresented backgrounds with senior leaders who can aid in their career advancement.

Celebrate Diversity: Acknowledge and celebrate cultural events and heritage months within your organization. This can encompass cultural awareness days, diversity fairs, or special events.

Promote Inclusive Leadership: Encourage leaders to serve as role models for inclusivity. Leaders should lead by example, actively advocate for diversity, and hold themselves accountable for shaping an inclusive environment.

Community Engagement: Get involved with and support organizations and initiatives in your local community that promote diversity and inclusion. This may entail volunteering, offering resources, or forming partnerships with community organizations.

Listen and Act: Establish channels for employees or community members to voice their concerns and ideas related to diversity and inclusion. Subsequently, take meaningful action based on their feedback.

Continuous Evaluation: Routinely evaluate your diversity and inclusion efforts. Collect data, measure progress, and adapt strategies as necessary to ensure their ongoing effectiveness.

Promote Inclusivity in Education: Educational institutions can play a significant role in promoting inclusivity and diversity. Incorporate diverse perspectives and histories into curricula and create safe spaces for open dialogue.

Legislation and Policy: Advocate for and support policies and legislation that advance diversity and inclusion on a broader scale.Promoting inclusivity and diversity is an ongoing endeavor that necessitates dedication and commitment from individuals and institutions alike. By adopting these measures, you can contribute to the development of a more inclusive and equitable society where everyone has the opportunity to thrive and be recognized for their unique contributions. By imparting the importance of inclusivity and diversity, teacher educators help create an educational environment where every student feels valued and empowered. This, in turn, contributes to a more just and equitable society, where educational opportunities are accessible to all.

Research and Innovation:-Teacher educators are not just consumers of knowledge but also creators of it. They engage in research that informs best practices in education, ensuring that their students are exposed to the most current and effective teaching methods. Research conducted by teacher educators often contributes to the development of evidence-based policies and practices in education. Research and innovation are two closely related concepts that play a vital role in driving progress, economic growth and societal development. They are often interconnected but have distinct characteristics:

Research:

Definition: Research is a systematic and organized process of inquiry aimed at generating new knowledge, .expanding existing knowledge, or solving specific problems (National Education Policy, 2020).

Purpose: Research is conducted to understand phenomena, answer questions, test hypotheses, or gather information. It can be basic or fundamental research (seeking to expand knowledge) or applied research (focused on solving practical problems) (National Education Policy, 2020).

Methods: Researchers use various methodologies, such as experiments, surveys, interviews, observations, and literature reviews, to collect and analyze data (National

Education Policy, 2020).

Innovation: Definition: Innovation refers to the process of creating and implementing new ideas, products, processes, or services that bring added value to individuals, organizations, or society (National Education Policy, 2020).

Purpose: Innovation aims to find practical solutions to real-world challenges, improve existing products or services, and create new opportunities for growth and improvement (National Education Policy, 2020).

Methods: Innovation can be driven by research findings, but it also involves creative thinking, design thinking, problem-solving, and collaboration among interdisciplinary teams (National Education Policy, 2020).

The relationship between research and innovation:

Research as a Driver of Innovation: Research often serves as the foundation for innovation. New discoveries and insights from research can spark innovative ideas. Basic research can lead to breakthroughs in understanding, which can then be applied in various ways, leading to innovation. Applied research directly addresses practical problems and can result in innovative solutions.

Innovation as a Product of Research and Development (R & D): Many innovations emerge from dedicated research and development efforts, where research findings are translated into practical applications. R&D departments in companies and institutions focus on creating new products, technologies, and processes based on scientific research.

Innovation Requires a Broader Perspective: While research is often centered on acquiring knowledge, innovation takes a broader perspective that encompasses turning knowledge into value-creating actions. Innovators need to consider market demand, user needs, feasibility, scalability, and the competitive landscape in addition to research insights.

Innovation Ecosystems: Both research and innovations thrive within innovation ecosystems that include universities, research institutions, businesses, government agencies, and startups. Collaboration and knowledge exchange among these entities can accelerate the translation of research into innovation Societal Impact: Both research and innovations have the potential to have a significant societal impact. Research contributes to knowledge dissemination and informed decision-making, while innovation drives economic growth and improves the quality of life. Research and innovation are intertwined processes that fuel progress and advancement in various fields, as emphasized in the National Education Policy of 2020. While research generates knowledge and understanding, innovation takes that knowledge and transforms it into practical solutions, products, or services that benefit individuals and society as a whole Both are crucial for driving technological, economic, and social development, aligning with the vision outlined in NEP 2020.

Conclusion:-Teacher educators are the unsung heroes of education, quietly shaping the future of teaching and learning. As the educational landscape continues to evolve, their role becomes even more critical. They are the mentors, the visionaries, the advocates of inclusivity, and the champions of innovation. Without them, educational transformation would be incomplete. It is essential to recognize the invaluable contributions of teacher educators and invest in their professional development. By doing so, we ensure that the cornerstone of educational transformation remains strong, and our education system can adapt and thrive in the face of the ever-changing challenges of the 21st century.

References:

1. 'Arya', Mohan Lal "Role of Emerging Technologies and ICYs in Teaching Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 10, issue 38, pp. 108-111.
2. 'Arya', Mohan Lal (2021), "An Analytical study of Flipped Learning Approach", Strad Research, vol. 8, issue 11, pp. 325-333.
3. 'Arya', Mohan Lal (2023), "A Study of Impact of Modern Technologies on Society", Naagfani, vol. 13, issue 44, pp. 90-93.
4. 'Arya', Mohan Lal (2023), "New Education Policy 2020: A Educational study", Jyotirveda Prasthanam, vol. 12, issue 2, pp. 89-93.
5. 'Arya', Mohan Lal and Ajay Gautama (2019), "Flipped Classroom Teaching: Model and its use for Information Literacy Instruction", IJRAR, vol. 5, issue 3, pp. 925-933.
6. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Bindal (2020), "An Analytical study of Innovativeness of Innovative teaching Method for stress free Education", IJRAR, vol. 7, issue 1, pp. 102-104.
7. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Yadav "Artificial Intelligence (AI) and Its role in Teacher education", GIS Science Journal, vol. 8, issue 10, pp. 134-139.
8. A. Seldon and O. Abidoye (2018), *The Fourth Education Revolution*, University of Buckingham Press, London, UK.
9. B. Du Boulay (2019), "Escape from the Skinner Box: the case for contemporary intelligent learning environments," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 2902–2919.
10. B. P. Woolf (2010), *A Roadmap for Education Technology (hal-00588291)*, University of Massachusetts Amherst, Amherst, MA, USA.
11. Gola, Rajkumari and 'Arya', Mohan Lal"Emerging Technologies and Teacher Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 11, issue 41, pp. 117-120.
12. I.Magnisalis, S. Demetriadis, and A. Karakostas"Adaptive and intelligent systems for collaborative learning support: a review of the field," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 4, no. 1, pp. 5–20.
13. J. Loeckx (2016), "Blurring boundaries in education: context and impact of MOOCs," *The International Review of Research in Open and Distributed Learning*, vol. 17, no. 3, pp. 92–121.
14. J. Petit, S. Roura, J. Carmona et al. (2018), "Jutge.org: characteristics and experiences," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 11, no. 3, pp. 321–333.
15. K. Ijaz, A. Bogdanovych, and T. Trescak (2017), "Virtual worlds vs books and videos in history education," *Interactive Learning Environments*, vol. 25, no. 7, pp. 904–929.
16. M. Cukurova, C. Kent, and R. Luckin (2019), "Artificial intelligence and multimodal data in the service of human decision□making: a case study in debate tutoring," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 3032–3046.
17. National Education Policy 2020, NCERT, New Delhi.
18. S. Kelly, A. M. Olney, P. Donnelly, M. Nystrand, and S. K. D'Mello (2018), "Automatically measuring question authenticity in real-world classrooms," *Educational Researcher*, vol. 47, no. 7, pp. 451–464.
19. S. Munawar, S. K. Toor, M. Aslam, and M. Hamid (2018), "Move to smart learning environment: exploratory research of challenges in computer laboratory and design intelligent virtual laboratory for eLearning technology," *Eurasia Journal of Mathematics, Science and Technology Education*, vol. 14, no. 5, pp. 1645–1662.
20. X. Ge, Y. Yin, and S. Feng (2018), "Application research of computer artificial intelligence in college student sports autonomous learning," *Kuram Ve Uygulamada Egitim Bilimleri*, vol. 18, no. 5, pp. 2143–2154.

हिंदी के विकास में स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान

शांति सुमन दीपांकर
शोधार्थी
इंदिरा गाँधी जनजातीय केंद्रीय,विश्वविद्यालय,अमरकंटक
अनुपपुर (म.प्र.)

डॉ. पूनम पाण्डेय
शोध निर्देशिका
इंदिरा गाँधी जनजातीय केंद्रीय,विश्वविद्यालय,अमरकंटक
अनुपपुर (म.प्र.)

शोध सार :- ***यह तथ्य सर्वथा सत्य एवं सर्वमान्य है कि मुंशी प्रेमचंद, , महावीर प्रसाद द्विवेदी , भारतेंद हरिश्चंद्र, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर आदि अनेक हिंदी साहित्यकारों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया। इन सबकी रचनाओं ने राष्ट्रीयता के विकास में अति महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिंदी साहित्यकारों की रचनाओं ने उदासीन लोगों को जगाने और क्रूर अंग्रेज तानाशाही के विरुद्ध उठ खड़े होने का सफल आह्वान किया। हिन्दी साहित्यकारों की न जाने कितनी रचनाओं पर अंग्रेजों ने रोक लगाई और न जाने कितना साहित्य जलाने की कोशिश की लेकिन उनकी लेखनी सदा एक सच्चे क्रांतिकारी की भांति स्वतंत्रता आंदोलन में विस्फोटक का कार्य करती रही हैं। हिंदी साहित्यकारों की लेखनी के इसी जज्बों ने आजादी को प्राप्त करने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया ।***

बीज शब्द :- राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, उत्कृष्ट साहित्य, हिंदी कवियों, आन्दोलन, शताब्दियाँ, स्वतंत्रता–संग्राम, मनीषियों आदि।

आज हमारे देश में 14 सितंबर 'हिंदी दिवस' के रुप में मनाया जाता है तथा यह क्यों मनाया जाता है, यह सर्वविदित है। वर्तमान समय में हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा ही नहीं राजभाषा भी है। हिंदी को एक प्रादेशिक भाषा की हैसियत से लेकर राष्ट्रभाषा के रुप में लोकप्रिय और सर्वमान्य बनने में और उसके पश्चात भारत की राजभाषा बनने में कई शताब्दियां लगी हैं । राजभाषा के रूप में हिंदी को जो मान्यता दी गयी उसमें स्वतंत्रता-संग्राम के हमारे राजनेताओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि हिन्दी के विकास के लिए उन चिन्तकों, मनीषियों और नेताओं ने अभूतपूर्व कार्य किया है जो अधिकतर हिंदीत्तर प्रदेश के थे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का विचार सर्वप्रथम बंगाल में उदित हुआ और राष्ट्रभाषा बनने के प्रारम्भ से अन्त तक इसे वहां के मूर्धन्य नेताओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। संपूर्ण देश के लिए राष्ट्रभाषा हिंदी की कल्पना करने वालों में सबसे अग्रणी बंगाल के श्री केशवचंद्र सेन है । उन्होंने 1873 में अपने पत्र 'सुलभ समाचार' (बंगला) में लिखा "यदि भाषा एक न होने पर भारतवर्ष में एकता न हो तो उसका उपाय क्या है? समस्त भारतवर्ष में एक भाषा का प्रयोग करना इसका उपाय है। इस समय भारत में जितनी भी भाषाएं प्रचलित हैं, उनमें हिंदी भाषा प्राय: सर्वत्र प्रचलित है. इस हिंदी भाषा को यदि भारतवर्ष की एक मात्र भाषा बनाया जाए तो अनायास ही (यह एकता) शीघ्र ही सम्पन्न हो सकती है।" इनके अलावा अन्य अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने प्रान्तीयता की भावना से ऊपर उठकर मुक्त कंठ से हिंदी का समर्थन किया, जिनकी हिन्दी सेवा अविस्मरणीय रहेगी।

"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, जिसे मैं प्राप्त करके रहूंगा" का नारा देने वाले नेता बाल गंगाधर तिलक का स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। भाषा के बारे में तिलक का विचार था कि हिंदी ही एक मात्र भाषा है जो राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिंदी का समर्थन करते हुए 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में उन्होंने लिखा था "यह आंदोलन उत्तर भारत में केवल एक सर्वमान्य लिपि के प्रचार के लिए नहीं है, यह तो उस आन्दोलन का एक अंग है जिसे मैं राष्ट्रीय आन्दोलन कहूंगा और जिसका उद्देश्य समस्त भारत वर्ष के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण अंग है, अतएव अदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक दूसरे के निकट लाना चाहें तो सबके लिए समान भाषा के बढ़कर सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।" तिलक हिंदी को राष्ट्रभाषा मानते थे तथा देवनागरी को हिंदी की लिपि मानते थे । उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को प्रबल करने के लिए सन् 1903 में 'हिंदी केसरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारंभ किया और इस बात का परिचय दिया। उसके साथ ही तिलक ने अंग्रेजी की अपेक्षा हिंदी में भाषण देने की परम्परा आरंभ करके अन्य सभी लोगों के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया।

महात्मा गांधी भाषा के प्रश्न को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रश्नों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंनें प्रारंभ से हिंदी को स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। उनका अनुभव था कि "पराधीनता चाहे राजनीतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषाई क्षेत्र की, दोनों ही एक दूसरे की पूरक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा परमुखापेक्षी बनाये रखने वाली हैं।" सन् 1917 में उन्होंने एक परिपत्र निकाल कर हिंदी सीखने के कार्य का सूत्रपात किया। गांधी जी की प्रेरणा से 1925 में काँग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि कांग्रेस का, काँग्रेस की महासमिति का और कार्यकारिणी समिति का कार्य अधिकाश रूप से हिन्दुस्तानी में ही चलाया जायेगा। इसी का परिणाम था कि सन् 1925 में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन भरतपुर में हुआ जिसकी अध्यक्षता गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की और उन्होंने हिंदी में बोलकर हिंदी का प्रबल समर्थन किया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने विभिन्न राज्यों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के लिए न केवल नेताओं को प्रेरित किया अपितु लोगों के अलग-अलग जत्थो को विभिन्न राज्यों में भेजा। उन्होंने स्वयं अपने बेटे श्री देवदास गांधी को हिंदी-प्रचार के लिए भारत के दक्षिण में भेजा था। आज़ादी के आन्दोलन में इसे पुनीत कर्तव्य मानकर विभिन्न राज्यों में विभिन्न हिंदी -प्रचारक गए और वहाँ उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। राष्ट्रीय चेतना से युक्त हमारे ये हिंदी-प्रचारक आज़ादी में तथा आज़ादी के बाद भी लोगों को जाग्रत करते हुए उनके बीच हिंदी का प्रचार-प्रसार करते रहे ।

राष्ट्रपिता गांधी जी के प्रयासों से तमिलनाडु में हिंदी के प्रति ऐसा उत्साह प्रवाहित हुआ कि उस प्रांत के सभी प्रभावशाली नेता हिंदी का समर्थन करने लगे। यह वह समय था जब चक्रवर्ती राज गोपालाचारी जैसे नेता हिंदी के प्रचार को अपना भरपूर सहयोग दे रहे थे। 'पंजाब केसरी' के नाम से प्रसिद्ध लाला लाजपत राय एक महान देशभक्त शिक्षाशास्त्री ही नहीं, एक प्रभावशाली पत्रकार भी थे। पंजाब में हिंदी के प्रचार का पूरा श्रेय लाला जी को जाता है । जब उर्दू -हिंदी का विवाद जोरों से चल रहा था, तब लाला जी ने हिंदी का इतना समर्थन किया की पंजाब के शिक्षा क्षेत्र में हिंदी को महत्वपूर्ण स्थान मिला। उन्होंने अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की तथा उनमे हिंदी का अध्ययन अनिवार्य बनाया गया । लालाजी की प्रेरणा से ही पंजाब विश्वविद्यालय के पाठयक्रम में हिंदी को स्थान मिला। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पुरूष के रूप में विख्यात पंडित मदनमोहन मालवीय जी का

नाम हिंदी प्रचारकों में बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। वे न केवल एक महान हिंदीव्रती थे अपितु हिंदी आंदोलन के अग्रणी नेता भी थे। हिंदी के प्रचार - प्रसार और स्वरूप निर्धारण दोनों ही दृष्टियों से उन्होंने हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की। उन्हीं के प्रोत्साहन, समर्थन और प्रेरणा के फलस्वरूप हिंदी प्रशासन एवं राजकाज की भाषा बनी।'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान' की सेवा उनका संकल्प था। उनके सार्वजनिक जीवन की सक्रियता, उनके विशिष्ट आदर्श और योजनाएँ इसी संकल्प से प्रेरित थी। मालवीयजी जीवन-पर्यन्त भारतीय स्वराज्य के लिए कठोर तप करते रहे। अपितु हिंदी की प्रतिष्ठापना के लिए अनवरत साधना में लीन रहे। सन् 1886 के काँग्रेस अधिवेशन में श्री मालवीय के भाषण से प्रभावित होकर कालाकांकर के राजा ने अपने हिंदी दैनिक 'हिन्दुस्तान' का उन्हें संपादक बनाया। उसके बाद उन्होंने हिंदी साप्ताहिक 'अभ्युदय' प्रारंभ किया और 1910 में प्रयाग से 'मर्यादा' नामक हिंदी पत्रिका तथा सन् 1933 से 'सनातन धर्म' नामक हिंदी पत्र प्रारंभ किया। उन्हीं की प्रेरणा से कई और हिंदी पत्रिकाओं का जन्म हुआ।

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन की हिंदी सेवा भी अप्रतिम है। वे हिंदी साहित्य सम्मेलन के कर्ता-धर्ता थे और उनसे हिंदी प्रचार के कार्य को प्रबल गति मिली। टण्डन जी ने अपना सारा जीवन हिंदी की सेवा और हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि में अर्पित किया। हिंदी को आगे बढ़ाने और राष्ट्रभाषा के रूप में इसे सर्वोत्तम स्थान देने के लिए टण्डन जी ने कठिन परिश्रम किया। उन्होंने 10 अक्टूबर 1910 को वाराणसी के नागरी प्रचारिणी सभा के प्रांगण में हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की। इसके पश्चात 1918 में उन्होंने 'हिंदी विद्यापीठ'और 1947 में 'हिंदी रक्षक दल'की स्थापना की। टण्डन जी हिंदी को देश की आज़ादी के पहले आज़ादी प्राप्त कराने का'और आज़ादी के बाद 'आज़ादी को बनाये रखने का'साधन मानते थे। उन्होंने हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए हर संभव प्रयास किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने बहुत ही आकर्षक ढंग से हिंदी भाषा के महत्व को बताया ताकि सबके मन में हिंदी भाषा के लिए प्रेम जाग जाए और देशभर में हिंदी का ही प्रचार-प्रसार हो। उन्होंने बहुत ही सरल ढंग से हिंदी को प्रगति के मार्ग पर लाने का प्रयास किया। टंडन जी के अतिरिक्त राष्ट्रीय नेताओं में देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी की हिंदी सेवा से कौन परिचित नहीं है। भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष के रुप में हिंदी को उचित स्थान दिलाने का श्रेय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को ही है। उन्होंने ही भारतीय संविधान की भारतीय भाषाओं में परिभाषिक कोष तैयार करवाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति के पद से उन्होंने जो हिंदी की सेवा की उसका विशेष महत्व है। उनके कार्यकाल में सरकारी स्तर पर हिंदी को मान्यता मिली।

"यदि भारत में प्रजा का राज चलाना है, तो वह जनता की भाषा में चलाना होगा" इन शब्दों में जनता की भाषा की वकालत करने वाले काका कालेलकर जी का नाम हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार और विकास में अतुलनीय योगदान देने वालों में आदर के साथ लिया जाता है। दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के वे कर्णधार रहे और गुजरात में रहकर उन्होंने हिंदी प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाया। सन-1942 में वर्धा में जब हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना हुई तो काका साहब ने 'हिन्दुस्तानी' के प्रचार के लिए पूरे देश का भ्रमण किया। उन्होंने हिंदी के प्रचार कार्यक्रम को राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में प्रतिष्ठित किया और सन् 1938 में दक्षिण भारत के हिंदी प्रचार सभा के अधिवेशन में इसका खुलकर उद्घोष किया। इसी लक्ष्य पर अडिग रहते हुए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हिंदी के प्रचार-प्रसार और विकास में लगा दिया। श्री केशव चन्द्र सेन पहले ऐसे राष्ट्रीय नेता थे जिन्होने 'राष्ट्रभाषा हिंदी' के महत्व को हृदय से समझा और स्वीकार किया। साथ ही, भारत को एकता के सूत्र में बांधने की दृष्टि से सभी से यह आह्वान किया कि सब हिंदी को आत्मसात करें क्योंकि हिंदी हमारे देश की आत्मा है। उन्होने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए हर संभव प्रयास किया। उनका मानना था कि हमारा प्राथमिक उद्देश्य है अपनी बात को आखिरी व्यक्ति तक पहुँचाना और इस देश में आखिरी व्यक्ति तक संदेश पहुँचाने का सरलतम मार्ग है हिंदी। केशव जी का मत था कि हिंदी के माध्यम से हम किसी व्यक्ति के ही नहीं अपितु उसकी आत्मा तक को स्पर्श करने की क्षमता रखते हैं क्योंकि हिंदी भारत के जनसामान्य की आत्मा में बसती है।

राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रहरी के रुप में सम्मानित सेठ गोविन्द दास जी को कौन भुला सकता है। उन्होंने अपने पूरे युवाकाल में कई हिंदी पत्रिकाएं प्रारम्भ कर हिंदी के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया था। 18 मई सन्1949 में जब भारतीय संविधान सभा की बहस चल रही थी तब गोविंद दास जी ने कहा था – "मैं व्यक्तिगत रूप से यह चाहता हूँ कि – संविधान मौलिक रूप में हमारी मुख्य भाषा में हो, अंग्रेजी में नहीं; जिससे हमारे भावी न्यायाधीश अपनी भाषा पर निर्भर हो सकें, विदेशी भाषा पर नहीं।" भारतीय लोकसभा के सदस्य के रुप में उन्होंने हिंदी के प्रसार के लिए कई कदम उठाये जो हिंदी को राजभाषा का स्थान दिलाने में सहायक सिद्ध हुए, उन्होने हिंदी की समृद्धि और प्रचार के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इसी कारण से 1963 में सेठ जी को अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया था।

निष्कर्ष :-

संक्षेप में हमारा निष्कर्ष है कि हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं उसे राजभाषा की मंजिल तक पहुंचाने में स्वतंत्रता सेनानी राष्ट्रीय नेताओं के महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त भी अन्य बहुत से महत्वपूर्ण नेताओं के नाम गिनाये जा सकते हैं, जिन्होंने हिंदी का प्रबल समर्थन किया और हिंदी को विकसित करने में अपना बहुमूल्य सहयोग दिया।

****

सन्दर्भ -:

1. हिन्द स्वराज – महात्मा गाँधी (प्रभात प्रकाशन ४/११ आसफ अली रोड – नई दिल्ली ११०००२
2. गोरा – रविन्द्रनाथ टैगोर – रूपा प्रकाशन एंड कंपनी
3. न्यू लेप्स फॉर ओल्ड-अरविन्द घोष (१८९३ दैनिक समाचार पत्र 'इंदु प्रकाश' में लिखा गया था।
4. हिंद स्वराज – महात्मा गांधी
5. वन्देमातरम – अरविन्द घोष
6. भारत एक खोज – जवाहर लाल नेहरू

The Transformative Role of Inclusive Education in India's Secondary Education System

Dr. Parina Bansal
Assistant Professor
Department of Education
IFTM University, Moradabad, U.P., India

Abstract:-In recent years, the concept of inclusive education has gained significant attention, particularly in the context of India's secondary education system. This article explores the transformative role of inclusive education in promoting equality and empowerment in India's diverse and complex society. Inclusive education goes beyond mere integration; it embodies the belief that every student, regardless of abilities, deserves equal access to quality education. This article defines inclusive education, highlights its benefits, and discusses the challenges in its implementation. The benefits of inclusive education are manifold. It enhances learning by creating diverse classrooms that foster critical thinking and social development. It empowers students, including those with disabilities, and prepares them for a world where diversity is the norm. Inclusive education is not only a legal and ethical imperative but also a means to level the educational playing field and reduce disparities. Inclusive education is a strategic investment in India's future. It lays the foundation for an inclusive, equitable, and prosperous nation by providing every child with the opportunity to learn and contribute regardless of their background or abilities. While challenges persist, collaborative efforts involving the government, educational institutions, communities, and parents can make inclusive education a reality for all students in India.

Key Words:- Inclusive Education, Secondary Education, Multidimensional,

Introduction:-In recent years, the concept of inclusive education has gained significant attention, and rightfully so. It underscores the importance of ensuring that every child, regardless of their abilities, background, or challenges, has equal access to quality education. Within the context of India's secondary education system, inclusive education plays a crucial role in promoting equality, celebrating diversity, and preparing future generations to thrive in an inclusive and dynamic society.

Understanding Inclusive Education:- Inclusive education represents more than just a policy or practice; it constitutes a fundamental shift in the perception and delivery of education. It embodies the belief that every student has the right to participate in, benefit from, and contribute to a quality education. This philosophy holds particular significance in a diverse and complex country like India, where numerous languages, cultures, and socio-economic backgrounds intersect. Inclusive education is not merely an educational philosophy but a fundamental human right. It upholds the belief that every child, regardless of their abilities or disabilities, deserves equal access to a quality education. Going beyond the integration of students with disabilities into mainstream classrooms, inclusive education strives to cultivate an environment that embraces diversity and nurtures the holistic development of all learners. In this article, we will explore the concept of inclusive education, its advantages, challenges, and its pivotal role in promoting equality and empowerment.

Defining Inclusive Education:- Inclusive education is a multidimensional concept that transcends the physical placement of students in regular classrooms. It revolves around recognizing and appreciating the unique strengths and needs of every learner, coupled with the provision of necessary support and accommodations to facilitate their meaningful participation in the learning process. The essence of inclusive education is to dismantle barriers and eliminate discrimination, thereby advocating for the complete inclusion of students with disabilities, as well as those hailing from diverse cultural, linguistic, and socio-economic backgrounds.

Benefits of Inclusive Education:

Enhanced Learning:- Inclusive classrooms create an enriching learning environment where students are exposed to diverse perspectives and ideas. This diversity fosters critical thinking and creativity, enriching the educational experience for all.

Social Development: Inclusive education encourages social interaction and acceptance among students with varying abilities. It acts as a catalyst in diminishing stereotypes and prejudices, ultimately contributing to a more inclusive society.

Empowerment:- The inclusion of students with disabilities in mainstream classrooms cultivates a sense of belonging and self-worth among them. This empowerment often results in heightened self-esteem and confidence.

Preparation for the Real World: Inclusive education systems prepare students for a world where diversity is the norm. It equips them with the skills and attitudes necessary to work and interact harmoniously with individuals from diverse backgrounds.

Legal and Ethical Imperative: Many countries have enshrined inclusive education as both a legal and ethical

imperative. For instance, the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities strongly emphasizes the right to inclusive education for individuals with disabilities.

Challenges in Implementing Inclusive Education- Although the merits of inclusive education are undeniable, its implementation presents several challenges:

Lack of Resources:- Adequate resources, including well -trained educators, accessible facilities, and support services, are essential for inclusive education. Unfortunately, many schools and educational systems grapple with resource constraints.

Teacher Training:- Educators often require specialized training to effectively teach in inclusive classrooms. They must adapt their teaching methods to cater to diverse learning styles and needs.

Attitudinal Barriers:- Prejudices and misconceptions about students with disabilities or differences can create attitudinal barriers. Transforming these attitudes among educators, students, and parents is an ongoing challenge.

Assessment and Evaluation: Traditional assessment methods may not accurately gauge the progress of all students, especially those with disabilities. Inclusive education necessitates flexible and inclusive evaluation practices.Fostering Equality and Empowerment-Inclusive education serves as a potent instrument for nurturing equality and empowerment:

Equal Access:- Inclusive education guarantees equal access to educational opportunities for all students, regardless of their background or abilities. This levels the educational playing field and reduces disparities.

Promoting Diversity: Inclusive education celebrates diversity as a strength rather than a weakness. It instills in students the value of appreciating differences and learning from one another.

Building Empathy: Inclusive classrooms offer a unique environment for students to develop empathy and understanding. Interactions with peers who possess different needs and challenges foster compassion and acceptance.

Enhancing Social Integration: Inclusive education breaks down barriers and fosters collaboration among students, thereby contributing to the creation of a society where every individual is valued and included.

Inclusive education transcends a mere pedagogical approach; it represents a societal imperative. It underscores the intrinsic worth and potential of every individual, offering them the tools and opportunities they require to flourish. While implementing inclusive education poses challenges, the benefits in terms of equality, empowerment, and social inclusion far outweigh these difficulties. Embracing inclusive education is a significant stride toward establishing a more equitable and inclusive society where every person has the opportunity to realize their full potential.The Significance of Inclusive Education in Secondary Schools-Inclusive education is an essential cornerstone of contemporary education systems, extending beyond mere accommodation for students with diverse needs. It embodies the principles of diversity, equity, and access for all learners. Secondary schools, in particular, hold a crucial role in nurturing the minds and talents of adolescents. To truly understand the importance of inclusive education in secondary schools, we must recognize the manifold advantages it offers to students, educators, and society as a whole.

Fostering Diversity and Promoting Tolerance:- Inclusive education within secondary schools stands out for its capacity to foster diversity and cultivate tolerance among students. Within such environments, students from a myriad of backgrounds, abilities, and experiences coexist and learn side by side. This exposure to diversity not only enriches their educational experiences but also contributes to dismantling stereotypes and prejudices. Students learn to respect and appreciate differences, thereby contributing to the creation of a more inclusive and harmonious society.

Academic and Social Growth:- Inclusive education ensures that students with disabilities or special needs receive the support necessary to thrive academically and socially. By providing tailored instruction and accommodations, educators empower these students to reach their full potential. Simultaneously, their peers without disabilities also benefit from exposure to various learning styles and perspectives, fostering their critical thinking skills and empathy.

Equal Opportunities for All:- Inclusive education guarantees equal opportunities for all students. It eradicates barriers to learning, ensuring that every student can access a high-quality education, regardless of their background or abilities. This commitment to equal access aligns seamlessly with the principles of social justice, empowering students to pursue their dreams and aspirations without unwarranted obstacles.

Preparation for the Real World:- Secondary schools serve as a crucial bridge between adolescence and adulthood. Inclusive education equips students with invaluable life skills, such as empathy, adaptability, and problem-solving, which are indispensable for success in the real world. When students learn to collaborate with peers from diverse backgrounds, they become better prepared to thrive in a globally interconnected society and workplace.

Reduced Stigmatization:- Historically, students with

self-esteem. Inclusive education mitigates such stigmatization by fostering a sense of belonging. When students with diverse needs are integrated into regular classrooms, their unique abilities and talents shine, reshaping perceptions and dismantling stigmas associated with disabilities.

Enhanced Teaching Practices:- Inclusive education propels educators to adapt their teaching methods and strategies to cater to the needs of all students. This ongoing professional development results in more versatile and effective teaching practices. Educators become adept at differentiating instruction, providing targeted support, and creating inclusive classroom environments that benefit all students, irrespective of their abilities or backgrounds.

Promoting Inclusivity Beyond School:- The lessons derived from inclusive secondary schools extend well beyond the classroom. Students raised in inclusive environments are more inclined to become advocates for inclusivity and equality in society. They carry these values into adulthood, fostering a more inclusive and accepting community. Inclusive education in secondary schools transcends being a mere educational policy; it signifies a commitment to creating a fairer, more diverse, and tolerant society. By nurturing diversity, fostering tolerance, ensuring equal opportunities, and preparing students for the real world, inclusive education delivers numerous benefits to students, educators, and society at large. It is a potent tool for dismantling barriers and constructing a more inclusive and harmonious future. As we progress into the 21st century, it remains imperative to prioritize and invest in inclusive education to guarantee that every student can realize their full potential.

Equity and Equality: Inclusive education in secondary schools helps bridge the gap between students with disabilities, those from disadvantaged backgrounds, and their more privileged peers. It ensures that every child has access to the same educational opportunities, regardless of their individual circumstances. This not only promotes social justice but also contributes to a more equitable society.

Diversity Celebration: India's rich diversity is one of its greatest strengths. Inclusive education encourages the celebration of this diversity within classrooms. Students from different backgrounds and abilities learn together, fostering a sense of empathy, respect, and unity. This exposure to diverse perspectives prepares them to navigate the complexities of a multicultural world.

Improved Learning Outcomes: Inclusive classrooms often employ a variety of teaching methods and resources to cater to the diverse needs of students. This results in improved learning outcomes for all students, as teachers adapt their strategies to ensure that every child understands and retains the material. Inclusive practices benefit not only students with disabilities but also those without.

Personal Growth: Beyond academic achievements, inclusive education fosters personal growth. Students learn tolerance, patience, and understanding. They become more accepting of differences, which is a valuable life skill. This personal growth extends to teachers and school staff, who develop a greater sense of empathy and adaptability.

Preparation for the Real World: Inclusive education mirrors the real world, where individuals with diverse backgrounds and abilities work and live together. Students who experience inclusive education are better prepared to engage in a society that values diversity and inclusivity. This, in turn, contributes to the social and economic development of the nation.

Challenges and Solutions of Inclusive Education in Secondary Schools:-Inclusive education is a transformative concept aimed at providing equal opportunities for quality education to all students, regardless of their abilities or disabilities. In recent years, inclusive education in secondary schools has become an increasingly important topic in India. The government has taken significant steps towards integrating students with disabilities into mainstream educational settings. However, several challenges need to be addressed to ensure the success of inclusive education in secondary schools. This article delves into the challenges faced by inclusive education in India and proposes potential solutions to overcome these obstacles.

1. Lack of Infrastructure and Resources: Inadequate infrastructure and resources in many schools pose a significant challenge to inclusive education in India. This includes the absence of accessible classrooms, ramps, assistive technologies, and a shortage of specially trained educators. Without these essential resources, creating a conducive learning environment for students with disabilities becomes exceptionally challenging.

Solution: The government must prioritize investments in upgrading school infrastructure to make them more accessible. Adequate funds should be allocated for the procurement of assistive devices and the training of teachers in inclusive education techniques. Additionally, forging partnerships with NGOs and private organizations can help bridge resource gaps.

2. Attitudinal Barriers: Attitudes towards students with disabilities can be a significant barrier to their inclusion in mainstream schools. Prejudice, stereotypes, and a lack of awareness often lead to discrimination and exclusion of these students.

Solution: Implement comprehensive awareness programs and sensitization workshops for teachers, students, and parents. These programs should focus on promoting a more inclusive and accepting environment within schools. Additionally, efforts should be made to highlight success stories of students with disabilities to challenge stereotypes and misconceptions.

3. Shortage of Trained Special Educators: India faces a severe shortage of trained special educators who possess the expertise needed to support students with disabilities effectively. In many cases, regular classroom teachers are not adequately equipped to address the diverse needs of students with disabilities.

Solution: Investment in teacher training programs that specifically focus on inclusive education is essential. Incentives, such as scholarships or career progression opportunities, can be provided to educators who choose to specialize in special education. Moreover, establishing resource centers in various regions where schools can access expertise and support is crucial.

4. Curriculum Adaptation: Adapting the curriculum to meet the needs of students with disabilities is a complex task that requires a deep understanding of various disabilities and how they impact learning. Often, there is a lack of appropriate teaching materials and strategies to cater to diverse learning needs.

Solution: Develop inclusive curricula that can be tailored to individual needs. Create accessible textbooks and digital resources and ensure that they are widely available. Additionally, provide continuous training to teachers on how to adapt their teaching methods effectively to cater to the diverse needs of students.

5. Assessment and Evaluation: The traditional examination system in India is not always conducive to assessing the abilities and progress of students with disabilities. Standardized tests may not accurately reflect their true potential.

Solution: Explore alternative assessment methods, such as continuous evaluation, portfolios, and oral examinations, to ensure a fair assessment of all students. Assessment criteria should be designed with the diverse needs of students in mind, focusing on their individual growth and achievements rather than merely comparing them to their peers.

6. Parental Concerns and Stigma: Some parents of children with disabilities may resist the idea of inclusive education due to concerns about the quality of education and fear of stigma. Overcoming these concerns is essential for successful inclusion.

Solution: Actively engage parents in the decision-making process and provide them with information about the benefits of inclusive education. Create support groups and counseling services for parents to address their concerns and provide a platform for sharing experiences and strategies. Schools can also collaborate with parent associations to foster a sense of community and support.

7. Inadequate Policy Implementation: While India has developed policies and laws to promote inclusive education, effective implementation at the ground level remains a significant challenge. Often, schools lack awareness of these policies, and there is limited accountability for their enforcement.

Solution: Strengthen monitoring and evaluation mechanisms to ensure policy compliance at the school level. Regular audits can help identify gaps in implementation and inform targeted interventions. Additionally, public awareness campaigns can educate stakeholders about their rights and responsibilities under inclusive education policies.

8. Diverse Learning Needs: Students with disabilities have diverse learning needs, and a one-size-fits-all approach is insufficient to address them adequately. Schools may struggle to cater to the individualized requirements of each student.

Solution: Promote the use of Individualized Education Plans (IEPs) for students with disabilities. These plans outline specific goals, accommodations, and support services tailored to each student's unique needs. Schools can also facilitate collaboration between teachers, special educators, and parents to create and implement effective IEPs.While the benefits of inclusive education in India's secondary education system are evident, several challenges must be addressed for its successful implementation:

Infrastructure and Resources: Many schools lack the infrastructure and resources needed to accommodate students with disabilities. To overcome this challenge, the government and educational institutions must invest in accessible facilities and provide appropriate teaching aids.

Teacher Training: Teachers need specialized training to effectively teach in inclusive classrooms. Ongoing professional development programs can help teachers acquire the necessary skills to cater to diverse learning needs.

Awareness and Sensitization: Raising awareness and promoting a culture of inclusivity among students, parents, and communities is crucial. This can help reduce stigma and create a supportive environment for all students.

Policy Implementation: Strong policies supporting inclusive education must not only be formulated but

rigorously implemented at all levels of the education system.

Conclusion:-Inclusive education is not just a moral imperative; it is a strategic investment in the future of India. By fostering equality, celebrating diversity, and preparing students for the real world, inclusive education in the secondary education system is laying the foundation for a more inclusive, equitable, and prosperous nation. It is a collective responsibility to ensure that every child has the opportunity to learn, grow, and contribute to the betterment of society, regardless of their background or abilities. Inclusive education in secondary schools in India is a vital step towards building an inclusive and equitable society. While challenges persist, addressing them is not only a moral imperative but also a strategic investment in the nation's future. By tackling issues related to infrastructure, attitudes, teacher training, curriculum adaptation, assessment methods, parental concerns, policy implementation, and individualized support, India can make significant progress toward achieving a more inclusive and accessible education system. Inclusive education is not merely a concept; it is a path to empower every child, regardless of their abilities, to reach their full potential and contribute meaningfully to society. Through collaborative efforts involving the government, educational institutions, communities, and parents, India can truly make inclusive education a reality for all its students.

****

References:

1.'Arya', Mohan Lal (2020), "Role of Emerging Technologies and ICYs in Teaching Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 10, issue 38, pp. 108-111.
2.'Arya', Mohan Lal (2021), "An Analytical study of Flipped Learning Approach", Strad Research, vol. 8, issue 11, pp. 325-333.
3.'Arya', Mohan Lal (2023), "A Study of Impact of Modern Technologies on Society", Naagfani, vol. 13, issue 44, pp. 90-93.
4.'Arya', Mohan Lal (2023), "New Education Policy 2020: A Educational study", Jyotirveda Prasthanam, vol. 12, issue 2, pp. 89-93.
5.'Arya', Mohan Lal and Ajay Gautama (2019), "Flipped Classroom Teaching: Model and its use for Information Literacy Instruction", IJRAR, vol. 5, issue 3, pp. 925-933.
6.'Arya', Mohan Lal and Nikita Bindal (2020), "An Analytical study of Innovativeness of Innovative teaching Method for stress free Education", IJRAR, vol. 7, issue 1, pp. 102-104.
7.'Arya', Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "Artificial Intelligence (AI) and Its role in Teacher education", GIS Science Journal, vol. 8, issue 10, pp. 134-139.
8.Seldon and O. Abidoye (2018), *The Fourth Education Revolution*, University of Buckingham Press, London, UK.
9.Du Boulay (2019), "Escape from the Skinner Box: the case for contemporary intelligent learning environments," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 2902–2919.
10.P. Woolf (2010), *A Roadmap for Education Technology (hal-00588291)*, University of Massachusetts Amherst, Amherst, MA, USA.
11.Gola, Rajkumari and 'Arya', Mohan Lal (2020), "Emerging Technologies and Teacher Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 11, issue 41, pp. 117-120.
12.Magnisalis, S. Demetriadis, and A. Karakostas "Adaptive and intelligent systems for collaborative learning support: a review of the field," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 4, no. 1, pp. 5–20.
13.J. Loeckx (2016), "Blurring boundaries in education: context and impact of MOOCs," *The International Review of Research in Open and Distributed Learning*, vol. 17, no. 3, pp. 92–121.
14.J. Petit, S. Roura, J. Carmona et al. (2018), "Jutge.org: characteristics and experiences," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 11, no. 3, pp. 321–333.
15.K. Ijaz, A. Bogdanovych, and T. Trescak (2017), "Virtual worlds vs books and videos in history education," *Interactive Learning Environments*, vol. 25, no. 7, pp. 904–929.
16.M. Cukurova, C. Kent, and R. Luckin (2019), "Artificial intelligence and multimodal data in the service of human decision-making: a case study in debate tutoring," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 3032–3046.
17.National Education Policy 2020, NCERT, New Delhi.
18.S. Kelly, A. M. Olney, P. Donnelly, M. Nystrand, and S. K. D'Mello (2018), "Automatically measuring question authenticity in real-world classrooms," *Educational Researcher*, vol. 47, no. 7, pp. 451–464.
19.S. Munawar, S. K. Toor, M. Aslam, and M. Hamid (2018), "Move to smart learning environment: exploratory research of challenges in computer laboratory and design intelligent virtual laboratory for eLearning technology," *Eurasia Journal of Mathematics, Science and Technology Education*, vol. 14, no. 5, pp. 1645–1662.
20.X. Ge, Y. Yin, and S. Feng (2018), "Application research of computer artificial intelligence in college student sports autonomous learning," *Kuram Ve Uygulamada Egitim Bilimleri*, vol. 18, no. 5, pp. 2143–2154.

'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक में अभिव्यक्त नारी जीवन की समस्याएं

देवानंद यादव
शोधार्थी,हिंदी विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक, मध्य प्रदेश मो. 9623690981

शोध सारांश :-

वर्तमान नारी का जीवन कई समस्याओं से घिरा हुआ है । लड़की मां के गर्भ में होती है तो भ्रूणहत्या की समस्या से उसे जूझना पड़ता है। लड़की के रूप में पैदा होने पर समाज में लिंगभेद की समस्या का सामना करना पड़ता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुत्र को उत्तराधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है, परंतु स्त्री को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। इसलिए समाज के लोग पुत्र की कामना में स्त्री की भ्रूणहत्या करने से पीछे नहीं हटते और अगर स्त्री जन्म भी ले लेती है, तो उसे उपेक्षित जीवन का ही शिकार होना पड़ता है। समाज में दहेज की प्रथा एक गंभीर समस्या है। जिसके कारण लोग लड़की को बोझ समझने लगते हैं और उसका जल्द-से-जल्द विवाह करके उससे छुटकारा पाना चाहते हैं। इसलिए लोग अयोग्य वर को भी अपनी लड़की ब्याह कर दहेज के बोझ से अपने आप को मुक्त कर लेते हैं । स्त्री की सुरक्षा का प्रश्न यह सदियों से चला आ रहा है। वर्तमान समय में स्त्री अपने आप को सुरक्षित महसूस नहीं करती है। उसके साथ यौन उत्पीड़न एवं बलात्कार की समस्या अक्सर देखने को मिलती है। जिससे न केवल उसको शारीरिक अपितु मानसिक पीड़ा का भी सामना करना पड़ता है। वैवाहिक जीवन की समस्या वर्तमान समय में स्त्री जीवन को बहुत परेशानी और तनावग्रस्त में डालती है। इसके अतिरिक्त दांपत्य जीवन में विघटन, सास-ननद द्वारा प्रताड़ना, बच्चे न पैदा होने पर बाँझ का लांछन और केवल लड़की पैदा होने पर उसे ही दोषी ठहराया जाता है । इस तरह स्त्री जीवन कई समस्याओं से घिरा हुआ है। जिसका चित्रण नादिरा जहीर बब्बर ने अपने नाटक 'जी जैसी आपकी मर्जी' के माध्यम से किया है ।

बीज शब्द :- स्त्री जीवन, नारी जीवन की समस्या, हिंदी महिला नाट्य लेखन, स्त्री विमर्श, 'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक, हिंदी नाटक।

भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज है। इसमें स्त्रियों को हमेशा दोयम दर्जे का ही स्थान दिया जाता है। ऐसे में पुरुष प्रधान समाज होने के कारण भारतीय समाज में महिलाओं को गौण स्थान ही दिया जाता है। भारतीय समाज का इतिहास बहुत पुराना है। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा एवं वेदपाठ का पूर्ण अधिकार था परंतु जैसे-जैसे समय बदलता गया, उनके ऊपर कई बंधन डालना आरंभ कर दिया गया। मध्यकाल आते-आते उनके ऊपर कई प्रतिबंध लगाए गए। उन्हें शिक्षा से वंचित कर दिया गया एवं उनकी पूर्ण स्वतंत्रता छीन ली गई। उन्हें घर की चहारदीवारी में रहकर काम करने के लिए मजबूर किया गया। उन्हें कई कुप्रथाओं का भी सामना करना पड़ा, जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह निषेध आदि। मध्यकाल में महिलाओं के साथ जबरदस्ती अपहरण करके उनका बलात्कार करना, उनसे विवाह करना यह आम बात हो गई । डॉ नगेंद्र द्वारा संपादित पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में नारी की स्थिति के संदर्भ में लिखा गया है - **"नारी को अपनी संपत्ति मानकर ही उसका भोग इनके जीवन का मूल मंत्र हो गया। विलास के उपकरणों की खोज और उनका संग्रह तथा सुरा-सुंदरी की आराधना अभिजात वर्ग का शगल था और मध्यम तथा निम्न वर्ग के लोगों में उसका बोलबाला उसके अनुकरण के कारण था । किसी की कन्या का अपहरण अभिजात वर्ग के लोगों के लिए साधारण बात थी। कदाचित् इसीलिए अल्पायु में लड़कियों का विवाह अधिक प्रचलित हो गया था ।... अतएव लड़कियों के साथ छेड़छाड़, तीतर- बटेर पालना और उन्हें लड़ाना शहजादों और राजकुमारों की दिन चर्या बन गई थी।"**[1]

ऐसी विकट परिस्थिति में महिलाओं की स्थिति का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि मध्यकाल महिलाओं के लिए कितना दयनीय रहा। आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार देखने को मिला। सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह को लेकर कानून बनाए गए। कुछ समाज सुधारकों ने भी स्त्री शिक्षा एवं स्त्री के सुधार के लिए कार्य किए हैं। जिससे उनकी स्थिति में सुधार देखने को मिला। 'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक में नारी जीवन की समस्याओं का यथार्थ वर्णन देखने को मिलता है । नारी जीवन की समस्याओं को दो भागों में बांट कर देख सकते हैं- विवाह पूर्व नारी जीवन की समस्या और विवाह उपरांत नारी जीवन की समस्या ।

1.विवाह पूर्व नारी जीवन की समस्या: -

भ्रूण हत्या एवं लिंग भेद की समस्या:- नाटककार नादिरा जहीर बब्बर ने अपने नाटक 'जी जैसी आपकी मर्जी' में चार पात्रों के माध्यम से समाज की सामाजिक विषमता और स्त्रियों के ऊपर हो रहे अन्याय और अत्याचार का वर्णन किया है। नाटक का शुरुआत कठपुतली के नर्तन से होता है, जो कि एक प्रतीक है। नाटक के चारों पात्र दीपा, वर्षा, सुल्ताना और बबली यह चारों के चारों पात्र प्रतीक के रूप में हमारे सामने आते हैं। जो कि हमारे समाज में विभिन्न धर्मों, जातियों एवं प्रांतों में रहने वाली स्त्रियों की प्रतीक है ।स्त्री किसी भी धर्म, किसी भी जाति या किसी भी प्रांत की रहने वाली क्यों न हो परंतु उसमें एक समानता है, वह स्त्री होने का। उनके ऊपर जो अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं वह सभी एक समान है। डॉ दीपा कुचेकर के अनुसार **"जिंदगी भर स्त्री पुरुषों के इशारों पर ही नाचती रहती है। उसके हाथ-पांव मुंह बंधे हुए होते हैं। वह कान होकर सुन नहीं सकती, आंखें होकर देख नहीं सकती, मुंह में जबान होकर बोल नहीं सकती। पुरुष चाहे वह पिता के रूप में हो, भाई, पति या बेटे के रूप में हो। वह जो भी कहता है उसे चुपचाप देखना, जो कहता है उसे चुपचाप सुनना और मुँह का प्रयोग केवल दो वक्त की रोटी खाने के लिए करना, बोलने के लिए नहीं। ऐसी जीती जागती कठपुतलियां स्त्री बन जाती है। नाटक के पात्र दीपा, वर्षा, सुल्ताना और बबली अंत में कठपुतलियों के रूप में मंच पर उपस्थित होती है।"**[2] नाटक के आरंभ में मंच पर दीपा स्कूल ड्रेस पहने हुए टापू खेलती हुई नजर आती है। इसमें उसके द्वारा एक गीत गाया जाता है जो इस प्रकार है।

"अक्कड़ बक्कड़ बंबे बोल/अस्सी नब्बे पूरे सौ
पाव रोटी बिस्कुट/भैया खाए कुट कुट
बहिने देखे टुक टुक/दादी बोले वेरी गुड" [3]

नाटक के आरंभ में दीपा के द्वारा गाए हुए इस गीत के माध्यम से यह स्पष्ट पता चलता है कि समाज में किस प्रकार सामाजिक विषमता दिखाई देती है। बेटे को खाने के लिए बिस्कुट दिए जाते हैं और बेटी को केवल टुकटुक देखना होता है। यही समाज में फैले हुए सामाजिक लिंगभेद को लेखिका ने उठाया है कि किस प्रकार दीपा नाटक में सामाजिक विषमता का शिकार होती है।

दीपा जब तीन महीने की अपनी मां के गर्भ में थी, तो उसके पिताजी उसकी माता को लेकर अस्पताल गए थे। यह चेक कराने के लिए कि वह लड़का है या लड़की। यह पता चलने पर कि गर्भ में लड़की है तो दीपा की दादी कहती है कि **"क्यों अपने सर पर बोझ बढ़ा रहा है रामशरण? मैं तो कहती हूं गिरवा दे इस लड़की को।"**[4] पिताजी डॉक्टर के पास गए और उसे गर्भपात कराने के लिए कहा, परंतु डॉक्टर ने गर्भपात करने से इंकार कर दिया। दीपा के परिवार वाले लड़की नहीं चाहते थे। लड़का चाहते थे, क्योंकि दीपा की दो बहने और एक भाई पहले से थे। दीपा के पिता रामशरण रेलवे में लोकोमैन का काम करते थे। वहीं पर उनके रेलवे कॉलोनी थी। उसी के पास रेलवे क्वार्टर में रहते थे। वहीं पर कंपनी के पास एक बाग था । जहां पर बच्चे खेलने के लिए जाते थे। परंतु दीपा और दीपा की दोनों बहने बाग में खेलने नही जा सकती थी, क्योंकि घर का सारा काम इन्हें ही करना पड़ता है। झाड़ लगाना, कपड़े धोना, बर्तन मांजने और मां रसोई के लिए सौदा लाती थी और रसोई का काम करती थी।

दीपा का बड़ा भाई घर का कोई काम नहीं करता था। वह लड़का था। इस कारण वह रात को देर से घर को लौट सकता था। सिनेमा देखकर लौटता तो गाना गाते हुए आता और दादी तुरंत कहती कि दीपा पानी ला कर दे। एक दिन दीपा घर का सारा काम करके थक चुकी थी और पढ़ने के लिए बैठी थी, क्योंकि उसका स्कूल में टेस्ट था। दादी के कहने पर उसने पानी लाकर नहीं दिया। **"मैंने कहा भैया अपने आप पानी नहीं पी सकते? यह सुनकर भैया ने मुझे जोर से थप्पड़ मारा और कहां ढीठ हो गई है ढीठ, एक दिन जमकर धुलाई कर दूंगा ना फिर दिमाग ठिकाने आ जाएगा। अंदर से बाबूजी चिल्लाते हुए बोले, इसे आज ठीक कर ही दे बिटवा... यह सुनकर भैया मुझे और मारने लगे।"**[5] बाद में पिताजी चिल्लाते हुए अंदर से आए और दीपा को घसीटते हुए ले जाकर अंधेरी स्टोर में बंद कर दिया। दीपा खूब रोई, चिल्लाई परंतु उसे किसी ने बाहर नहीं निकाला। उसे अगले दिन जब उसकी बड़ी बहन ने कहा कि दीपा को स्कूल जाना है तब पिता ने निकालने की अनुमति दी।

इस नाटक में दिखाया गया है कि दीपा की बुआ चंद्रमाला जब अपने चारों बच्चों के साथ छुट्टियों में आती है तो उसका बहुत मान सम्मान होता है, क्योंकि उसके सारे बच्चे लड़के हैं । दीपा स्कूल में शहीदी दिवस के फंक्शन में नाटक में अभिनय करती है। अभिनय में झांसी की रानी की भूमिका निभाती है। जिसके लिए उसे फर्स्ट प्राइज़ दिया जाता है। स्कूल की प्रिंसिपल दीपा की माँ से दीपा के तीनों बहनों की काफी तारीफ करती हैं और दीपा की खासकर। वह कहती हैं कि वह चाहे तो दीपा को स्कॉलरशिप मिल सकता है। दीपा उसकी दोनों बहनों को साल में केवल एक बार कपड़े आते हैं। वह भी रास्ते पर की दुकानों से और उसके भाई के लिए महंगे बड़े दुकान से कपड़े आते हैं । दीपा के भाई का बर्थडे धूमधाम से मनाया जाता है परंतु दीपा और उनकी बहनों के लिए कुछ भी ऐसा नहीं किया जाता। एक बार दीपा की बड़ी बहन दुर्गा बीमार पड़ती है उसे पीलिया हो जाता है परंतु परिवार वाले उसे कहीं पर भी डॉक्टर को नहीं दिखाते। उसकी हालत बिगड़ती है तब पड़ोसी कहते हैं .कि उसे रेलवे अस्पताल में ही भर्ती करवा दो। उसे देखने के लिए अस्पताल में कोई नहीं जाता। केवल माँ ही जाती है । वहां पर दुर्गा दीदी की मौत हो जाती है। दीपा के भाई को थोड़ा सा भी सर्दी जुखाम होने पर तुरंत कानपुर बड़े अस्पताल में ले जाया जाता है। परंतु दीदी के मर जाने पर भी कोई व्यवस्था नहीं की जाती। मरने का दुख केवल दीपा और उसकी बहन एवं माँ को ही हैं।

परिवार को इस की मौत से कोई फर्क नहीं पड़ता है। दीपा करती है **"मैं हमेशा सोचती हूं ऐसा क्यों होता है? क्यों अम्मा को मार पड़ती है? क्यों हम बहनों को मार पड़ती है? क्यों भैया इंग्लिश मीडियम में और हम बहिने हिंदी मीडियम में...? भैया को दो-दो ट्यूशन फिर भी घिसट-घिसट के पास होता है.. हम बिना ट्यूशन के स्कॉलरशिप लाते हैं। फिर भी क्यों नहीं प्यार करते हमें... क्यों नहीं प्यार करते हमें सब लोग...? क्या बुराई है हममें, हमें भी तो प्यार चाहिए न....?"**[6] नाटक में दीपा के माध्यम से लिंग-भेद जैसी सामाजिक समस्या को चित्रित किया गया है । प्रेमी प्रेमिका संबंध (प्रेम का बदलता रूप)- 'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक में वर्षा पोटे माटुंगा मुंबई में रहने वाली एक लड़की है। जिसके पिता रामदास पोते की कपड़ों की एक छोटी सी दुकान है। वर्षा को एक गुजराती लड़के जिग्नेश से प्यार हो जाता है परंतु जब वर्षा उसे कमिटमेंट की बात करती है, तो वह टॉपिक बदल देता है| दो साल तक उनके बीच में लव अफेयर चलते हैं| उसके बाद जब वर्षा उससे पूछती है **"देख जिग्नेश अगर तू अब मुझसे शादी का Commitment नहीं करेगा तो टा टा... बाय बाय..!"**[7] इस पर जिग्नेश शादी से इनकार करते हुए वर्षा से कहता है – **"ए वर्षा I also wanted to talk to you, क्या है कि अभी तमेरा ने मेरा, क्या है मैं मेरे फैमिली का Only son तो फैमिली बिजनेस भी मुझे ही संभालना है ना, फिर मेरे मम्मी पापा ने भी मुझे कह दिया कि कम्युनिटी के बाहर शादी नहीं करने का, तो मैं अपने मम्मी पापा के Against तो नहीं जा सकता ना।"**[8] जिग्नेश प्रेम के नाम पर वर्षा से अपनी कामवासना की तृप्ति करना चाहता था, वह उससे सच्चा प्रेम नहीं करता था । वर्षा कहती है कि **"Bullshit Community के बाहर की लड़कियों को घुमाना चाहते हो, उनके साथ सोना चाहते हो, तब मम्मी पापा से पूछा था? किस चीज में मॉडर्न होते हैं यह लोग? विचारों से... जिंदगी की जो बुनियादी चीजें हैं, मान्यताएं हैं, उनमें? नहीं सिर्फ कपड़ों में, सिगरेट में, शराब में, फ्री सेक्स में।"**[9] आधुनिक युग में प्रेम के बदलते हुए रूप को लेखिका ने दिखाया है। वर्तमान समय में कुछ समय के आकर्षण को ही लोग प्रेम समझ लेते हैं। यह प्रेम नहीं बल्कि क्षण भर का प्रेमासक्ति (प्रेम में आसक्त होने की अवस्था या भाव) है, केवल वासना भर है।

2.विवाह उपरांत नारी जीवन की समस्या: –

पति पत्नी संबंध:– 'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक की दूसरी पात्र वर्षा है । वर्षा के घर में उसकी बड़ी शोभा काकू है। जिनके पति अमेरिका शेट्टी फैमिली के उडिपी रेस्टोरेंट में मैनेजमेंट के लिए शोभा काकू को भारत में छोड़कर जाते हैं। जाते समय काका शोभा काकू से कहते हैं- **"शोभा मैं जाऊं न, तुझे भी जल्द वहां बुला लूंगा।"**[10] परंतु वहां जाने के बाद ही शेट्टी फैमिली के किसी लड़की से वह विवाह कर लेते हैं| और 15 -16 वर्ष बाद जब वह लौटते हैं, अपने बच्चों को भारत में इंडिया घुमाने और ताजमहल दिखाने के लिए । शोभा काकू उनसे मिलने के लिए आतुर होती है, परंतु वह शोभा काकू से मिलना नहीं चाहते और बिना मिले ही चले जाते हैं । शोभा काकू को जब पता चलता है कि उनके पति इंडिया आए हुए हैं, तो वह उनसे मिलना चाहती है। वह बहुत रोती है, कहती हैं- **"पाँच मिनट के लिए मुझे मिला दो उनसे, मैं कुछ पूछना चाहती हूं।"**[11] शोभा काकू के इतने दिनों का धैर्य टूट जाता है

वह निराश हो जाती है और अपने दोनों हाथों के नस को काटकर आत्महत्या कर देती हैं । वर्षा कहती है-**"काकू ने अपने दोनों हाथों की नसों को ब्लेड से काट कर आत्महत्या कर ली थी। उनका पूरा बिस्तर खून से लाल हो गया था। उनके तकिए के नीचे एक पर्ची मिली काका के नाम, उनकी अंतिम इच्छा थी कि वो आकर उनको अग्नि दे। अभी भी सोचती हो तो मेरा खून खौल उठता है। क्यों ऐसा होता है कि हम लोगों को जो पांव की जूती भी नहीं समझते उनके लिए अपनी जान दे देते हैं। क्यों हमें बचपन से कुट -कुट कर ये सिखाया जाता है कि पति जैसा भी हो एडजस्ट करो, क्योंकि अपने पति को सुखी रखने में ही हमारी सबसे बड़ी कामयाबी है। और हमारा सुख, हमारी आशाएं, हमारे सपने, उनका क्या ?"** [12]

यौन विकृति एवं बलात्कार की समस्या: - 'जी जैसी आपकी मर्जी' में नाटक की पात्र सुल्ताना का विवाह बारह- तेरह वर्ष की अवस्था में हो जाता है। उसके पति का नाम अकील था। एक दिन दोपहर के समय घर में कोई न होने पर अकील अपनी बारह- तेरह वर्ष की छोटी उम्र की बीवी के साथ बलात्कार करता है। सुल्ताना बहुत रोती चिल्लाती है परंतु उसका कोई नहीं सुनता। बाद में सुल्ताना की सांस जब आती है तो वह उसकी हालत को देखकर कहती है कि आज नहीं तो कल यह तो होना ही था। अब रो मत, अब चुपचाप घर का काम कर। सुल्ताना को चार बार बेटी पैदा होने के बाद उसका पति अकील उसको तलाक दे देता है। बाद में वह अपने मायके चली जाती है। वहां पर हकीम साहब की बुरी नजर उसके ऊपर पड़ती है और वह उसके भाइयों को बहला-फुसलाकर सुल्ताना से निकाह कर लेता है। निकाह के बाद वह उससे और उसकी बेटियों से घर के सारे काम करवाता है और औषधियां कुटवाता पिसवाता । सुल्ताना अपनी बच्ची का फीस भरने के लिए स्कूल जा रही थी कि अचानक रास्ते से लौटकर घर आई। **"घर पहुंची तो पूरा घर खाली। सोच रही थी कि सबीहा और हकीम साहब कहां गए कि अचानक बाथरूम से लोटा गिरने की आवाज आई। तेजी से बाथरूम की तरफ दौड़ी दरवाजे को धक्का मार के खोला। तो क्या देखती हूँ कि सबीहा बाथरूम में फर्श पर पड़ी हुई है, पूरी नंगी, मुंह में कपड़ा ठूंसा हुआ और वो हकीम नंगा मेरी बेटी पर चढ़ा हुआ था।"**[13] नाटक में हकीम अपनी ही बेटी के साथ बलात्कार करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप सुल्ताना उसका खून कर देती है।

पति का बाहर नाजायज संबंध:- नादिरा बब्बर का नाटक 'जी जैसी आपकी मर्जी' में बबली का विवाह एम.बी.ए. पास अमरदीप कोहली से होता है। जो कि दिल्ली में बड़ी कंपनी में बड़ी पोस्ट पर है। वह खुद को माचो मैन समझता है और बबली के साथ शारीरिक संबंध से संतुष्ट नहीं होता है। वह बबली से कहता है **"या बबली तुम्हारे साथ सेक्स करना ऐसा जैसे किसी मरी हुई मछली के साथ No Satisfaction what so ever."**[14] बबली पति के प्रमोशन से खुश है और वह मां बनने वाली है।यह बात वह अपने पति को फोन पर बताने के लिए रिसीवर उठाती है तो फोन पर अमन और अनीता जो कि अमन के बॉस की बीवी है। दोनों के अफेयर की बात सुनती है। उसे इस घर से, घर के हर चीज से, अमन से नफरत होने लगती है पर फिर विदाई के समय मां की बात याद आती है- **"बबली पुत्तल अपने हस्बैंड को हर हाल में खुश रखना।"**[15] बबली को उसकी माँ ने ही ऐसा संस्कार दिया है कि पुरुष जैसा भी हो, जो भी करे परन्तु बबली को उसे खुश रखने का प्रयास करना है। **"नाटककार ने स्त्री की विभिन्न दशा को नाटक द्वारा प्रस्तुत किया है। दीपा, वर्षा, सुल्ताना, बबली क्रमशः बच्ची, युवती और प्रौढ़ा है । बच्ची से शुरू होती दास्तान आगे बढ़ती जाती है। बचपन से युवावस्था, युवावस्था से प्रौढावस्था में यह त्रासदी के बढ़ती जाने की क्रिया को बड़े सुंदर ढंग से पिरोया है। स्त्री चाहे अनपढ़ घर की हो या पढ़े- लिखे घर की वह चाहे हिंदू हो, मुस्लिम हो या सिख- ईसाई हो, वह खुद पढ़ी- लिखी हो या अनपढ़ हो उसे हर हाल में पुरुष वर्चस्व में ही जीना पड़ता है। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक उस पर संस्कार ही कुछ ऐसे किए जाते हैं कि वह केवल त्यागमयी, लाचार अस्तित्व विहीन बनाई जाती है ।"**[16]

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि दीपा, वर्षा, सुल्ताना और बबली चारों ही पात्र स्त्री जीवन के विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं । दीपा के माध्यम से लिंग भेद एवं भ्रूण हत्या की समस्या को दिखाया गया है। वर्षा के माध्यम से आधुनिक युग में प्रेम के नाम पर वासना की पूर्ति की समस्या, सुल्ताना के माध्यम से बाल विवाह एवं बलात्कार की समस्या, बबली के माध्यम से यौन असंतुष्टि तथा लव अफेयर्स की समस्या को चित्रित किया गया है ।

****

संदर्भ:-

1. डॉ. नगेंद्र; (2017), हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 263
2. कुचेकर, डॉ. दीपा;हिंदी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या –140
3. बब्बर, नादिरा जहीर; (2020), जी जैसी आपकी मर्जी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-11
4. वही पृष्ठ संख्या-12
5. वही, पृष्ठ संख्या-15
6. वही, पृष्ठ संख्या-19
7. वही, पृष्ठ संख्या 24
8. वही, पृष्ठ संख्या 24
9. वही, पृष्ठ संख्या 25
10. वही , पृष्ठ संख्या 20
11. वही, पृष्ठ संख्या 23
12. वही, पृष्ठ संख्या 24
13. वही, पृष्ठ संख्या -34
14. वही, पृष्ठ संख्या -38
15. वही, पृष्ठ संख्या -42
16. कुचेकर, डॉ. दीपा; (2012), हिंदी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या 147

विन्ध्य क्षेत्र के स्वाधीनता आन्दोलन एवं साहित्य

डॉ.अभिशिखा नामदेव
हिन्दी विभाग
शासकीय कन्या महाविद्यालय
सीधी (म.प्र.)मो- 9098210777

साहित्य का मानव जीवन के साथ चिरंतन संबंध होता है सामाजिक प्राणी होने के कारण क्रिया कलापों में ही नहीं, विचारो में भी वह सामाजिक बना रहता है। समाज के किसी वर्ग से साहित्यकार का घनिष्ठ संबंध रहता है। यह परिवेश रचनाकार की मनोवृत्ति और उसके द्वारा साहित्यिक चेतना को प्रभावित करती है। साहित्य अपने व्यक्त या मूर्त रूप में रचना अथवा कृति है किन्तु अव्यक्त रूप में कृति के पीछे कृतिकार का व्यक्तित्व और कृतिकार के व्यक्तित्व के पीछे उसका सामाजिक परिवेश होता है। अतः साहित्य के व्यक्तित्व के पीछे उसका सामाजिक परिवेश होता है। अतः साहित्य का एक छोर सामाजिक परिवेश के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है।

19वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण घटना सन 1857 की कृति है। समाज में चेतना जागृत करने वाला यह आन्दोलन मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग के आरम्भ का सूचक माना जाता है। आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में यह क्रान्ति सीमा रेखा है। इस काल के साहित्य की प्रमुख विशेषता राष्ट्रीयता की भावना है, इसलिए कवियों को दरबार से बाहर जाना पड़ा। राजनैतिक क्षेत्र में जो आन्दोलन चल रहा था साहित्यकारों ने उसका समर्थन किया । जनता के साथ मिलकर विदेशी सत्ता का विरोध किया फलतः इस युग की कविता देश प्रेम से भरी हुई है। एक ओर सम्राज्यवाद और उसके कनिष्ठ सहयोगी भूमिपति और दूसरी ओर बहुसंख्यक भारतीय जनता, जिसके भारतीय पूजीपति वर्ग, मजदूर वर्ग और किसान सामिल थे उनके बीच उमड़ने वालें समझौता विहीन अन्तविरोधों ने राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की नींव डाली।

प्रत्येक रचना एक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया अपने समय की भावनाओं को साहित्यिक विधाओं में प्रकट करती है। आधुनिक काल आरंम्भ होने के पहले रीतिकालीन कविताओं में नायिकाओं के नख शिख वर्णन तथा श्रृंगारिक रूपों के चित्रण की प्रधानता थी। स्वाधीनता आन्दोलन का सूत्रपात होने से रचना धर्मिता में पुराने विषय वस्तु के मोह को त्याग कर देश प्रेम अतीत गौरव,समाज सुधार वर्तमान की आलोचना जैसी नवीन विषयों पर लेखनी चलाई। काल अपने अवरोध] जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एक रस हो चुका था] एक ऐतिहासिक प्रक्रिया ने उसे पुनः गत्यात्मक बनाया।

भारत के आधुनिक इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि, इसका उदभूत राष्ट्रवाद एवं स्वराज्य की अवधारणा को लेकर हुआ है। इस संदर्भ में सन 1857 की क्रान्ति नैतिक, सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक, आध्यत्मिक दिशा में नवीन विचारधार के उदघोष की क्रान्ति थी। यह सामान्य आन्दोलन नहीं था बल्कि एक ऐसी व्यापक क्रान्ति थी जिसने जनमानस को आन्दोलित कर दिया एवं प्रत्येक भारतीय को बलिदान के लिए प्रेरित किया। हिन्दवासियों यदि हम सब मन में ठान ले तो शत्रु को क्षण भर में धूल छटा सकते है और अपने प्राण प्रिय धर्म एवं देश को पूरी तरह भय मुक्त कर सकते हैं।भारत के स्वतंत्रता संग्राम का सूत्रपात होते ही अन्य राज्यों की भांति राजनैतिक जागरण का सूत्रपात विन्ध्य प्रदेश के राज्यों में आरम्भ हुआ। विन्ध्य क्षेत्र बघेलखण्ड और रीवा रियासत एक दूसरे के समानार्थी ही है। शिव संहिता में इस भू-खण्ड को वरुणान्चल नाम से उल्लेखित किया गया है। इसे शेषावतार लक्ष्मण की राजधानी माना गया है। बघेलखण्ड के इतिहास के केन्द्र के बांधवगढ़ भी है।

प्राचीन ग्रन्थों में बल का नाम करूष मिलता है। कारण यह है कि विन्ध्य का लोक जीवन अभाव और संकटो से त्रस्त रहा है, अतः करूष क्षुधा नामकरण की सार्थकता सिद्ध होती है। डॉ भगवती प्रसाद शुक्ल का मानना है कि''उत्तर में चातु सोहागी तथा डभौरा, पूर्व में देवसर, सिगरौली दक्षिण में लखोरा अमरकंटक, पश्चिम में मैहर, सतना कोठी तथा सोहावल तक का क्षेत्र में बघेली भाषा जाती है।''

प्राचीन काल में उत्तरी भारत में शौरसेनी तथा मगधी दो प्राकृत भाषाएं प्रचालित थी। शौरसेनी और मागधी के बीच जो प्राकृत प्रचालित थी उसे अर्द्ध मागधी कहा जाता था। शौरसेनी का केन्द्र मथुरा तथा मागधी का केन्द्र पटना था, अर्द्धमगधी में दोनों के लक्षण विद्यमान थे जिससे पूर्वी हिन्दी की उत्पत्ति हुई। पूर्वी हिन्दी से ही बघेली, छत्तीसगढ़ी और हिन्दी बोलियों का विकास हुआ। ''कथन है कि यद्यपि जनमत इसे अलग बोली मानता है। किन्तु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर यह अवधी की ही एक उप बोली ज्ञात होती है और इसे दक्षिणी अवधी कह सकते हैं।''

सन 1857 की क्रान्ति समाज में राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने वाला अन्दोलन था। यह आन्दोलन आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक सीमा रेखा है इसके पूर्व के कविता में राजाओं के युद्ध प्रेम, श्रृंगार से संबंध रही, परन्तु स्वाधीनता आन्दोलन के बाद कविता में जनजीवन और राजनैतिक परिस्थितियों के साथ संबन्ध स्थापित हुआ राष्ट्रीय काव्यधारा में विन्याचल के कवियों में भी राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी जिसमें प्रमुख रूप से बुन्देलवाला गुजराती देवी,ठाकुर गोपालशरण सिंह, लाल महाबलि सिंह, वियोगी हरि, वियोगी हरि के काव्य का उदाहरण दृष्टव्य है-

जाहि देखि फरहत गगन, गये कॉप जग राज
सो भारत की जय ध्वजा, परि धरातल आज।

ठाकुर गोपालशरण सिंह का महाकाव्य जगदालोक राष्ट्र की आलाबापू को नायक बनाकर ही लिखा गया है। कवि की राष्ट्रीयता में स्वदेशी महिला और जागरण के भाव परिलक्षित होते है। उनकी रचनाएं मानवीयता पर आधारित विश्व शान्ति चाहती है,उसे वीर भूमि परत्रतंता, पीडादायक प्रतीत होती है।

वीरो की यह जन्मभि है रामकृष्ण का लीला स्थल।
भीष्म युधिष्ठिर पार्थ दोण की कीर्ति कौमुदी से उज्जवल ।।

विन्ध्य क्षेत्र में राष्ट्रीय विचारधारा के कवियों में ब्राम्हदेव सिंह, भगवान सिंह गौर,अम्बिका प्रसाद भट्ट,शिवमंगल सिंह सुमन, गंगा प्रसाद पाण्डेय, भैरवदीन, जगदीश चन्द्र जोशी आदि है। (बुन्देलावाला) लाला भगवानदीन की पत्नी थी, जिनकी सम्वत 1968 में अल्पआयु में ही मृत्यु हो गई थी। उनकी रचना धर्मिता का उदाहरण-

सावधान हे युवक उमंगों,सावधानता रखना खून।
युवा समय के महामनोहर, विषयों में जाना मत डूब।।

उसी कालक्रम में सरदार याचवेन्द्र सिंह, कप्तान साहब, शत्रुसूदन सिंह, रामेश्वर प्रसाद रमेश, चन्दशेखर शर्मा आदि का नाम भी उल्लेखनीय है चन्द्रशेखर की रचनाओं में मॉ भारती की उपासना है।

रहो भारत सत्य सनातनता के उपासक, भारती के बने प्यारे।
मुसकान की मंजु मरिचिका,पुंज प्रसार रहे नित पास तुम्हारे ।।

, स्वाधीनता आन्दोलन में सम्पूर्ण जीवन समर्पित करने वाले महापुरूषों पर अनेक रचना कारों ने काव्य सृजन किया है। श्री निवास शुक्ल सरस द्वारा लिखा गया रूद्र साह खण्ड काव्य शौर्य और वीरता का अनुपम क्रम है। रूद्रशाह सीधी जनपद में बसे चौहान वंशियों के गौरवमयी की पुरोधा एवं एक अदभुत जीवन यात्रा का नाम है राणाप्रतापपृथ्वीराज,शिवाजी एवं लक्ष्मीबाई की भाँति रूद्रशाह की भाँति, रूद्रशाह का जीवन बूँद से शुरू होकर समुद्र बनने का नाम है।

जय-जय कार मानती, अब भी विध्यभूमि की माही ।
रूद्रशाह के प्रति गौरवान्वित सीधी की नन्द घाटी।।
पौरुष का दिनमान अमर हो बने सुसाशित धूल ।
पल्लवित होवें पौध धरा पर,महके यश के फूल ।।

इसी तरह गोमती प्रसाद विकल प्रबंध रचना रणमत सिंह और रणजीत राय में स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों की वीरता का तथ्य एवं कथ्य परक वर्णन किया गया है। यह दोनों सपूत विन्ध्य की पावन भूमि में जन्मे तथा देश की आजादी के लिए शहीद हो गए। इनकी शहादत इतिहास में सर्वणाक्षरों में अंकित है। यथा-

जेउन धरती पर हम जन्मेन हाथ जोड़कर हवै प्रनाम
वीर बघेली माटी अपन नाम गाँव का है परनाम।।
जब तक एक बेटवा बिटिया के हाथे मा रहे दुनाल्ली।
कौउनेउ बहरी कैन होई, कबहु इहं बडेरी काली ।।

वस्तुतः साहित्य समाज का दर्पण है यह सूत्र वाक्य पूर्णतः परिलक्षित होता है। विन्ध्य के साहित्य में भी तत्कालीन समाज का चित्रण है समाज एक परिवर्तन शील व्यवस्था है स्वाधीनता आन्दोलन के कारण राष्ट्रीय स्तर पर साहित्यकारों में देश की गर्हित अवस्था को चित्रण कर देशवाशियों के मन में देश प्रेम की भावना जगाने का भरपूर प्रयास किया विन्ध्य के साहित्यकारों ने भी एक और कविताओं के माध्यम से देशवासियों को जगाने का प्रयास किया है। दूसरी ओर अंग्रेजो की कूटिल नितियों की भत्सर्ना की है। राम नरेश सिंह बन्धु की कविता ने वीर सैनिकों को जगाने का कार्य किया है।

फूल करदे केतली, मरणा को जीवन बना दे ।
तार टूटे वीणा के हो, रागिनी की जय बजा दे ।।
सजग हो बन्धुत्व योगी, रात्रि गत हुकार दें।
ओ वीर सैनिक जाग रे।।

साहित्य का मानव जीवन के साथ चिरंतर संबंध है। समाज के किसी भी वर्ग से साहित्यकार का घनिष्ठ संबंध रहता है। यह परिवेश रचनाकार की मनोवृत्ति और उसके द्वारा साहित्यिक चेतना को प्रभावित करता है। प्रत्येक रचना एक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया अपने समय की भावनाओं को साहित्य की विधाओं में प्रकट करती है। स्वाधीनता आन्दोलन का सूत्रपात होने से रचना धर्मिता में पुराने विषय वस्तु के मोह को त्याग कर देशप्रेम अतीत गौरव, समाज सुधार वर्तमान की आलोचना जैसी नवीन विषयों पर लेखनी चलाई है। अन्य राज्यों की भाँति राजनैतिक जागरण का सूत्रपात विन्ध्य प्रदेश के राज्यों में भी आरंभ हुआ विन्ध्य क्षेत्र बघेल खण्ड और रीवा रियासत एक दूसरे के समानार्थी ही है।शिव संहिता में इस भूखण्ड को वरुणान्चल नाम से उल्लेखित किया गया है। विन्ध्याचल के कवियों में भी राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी, जिसमें प्रमुख रूप से बुदेलावाला गुजराती देवी, ठाकुर गोपाल शरण सिंह लाल महावलि सिंह, वियोगी हरि आदि विन्ध्य क्षेत्र राष्ट्रीय विचारधारा के कवियों में ब्रम्हदेव सिंह,भगवान सिंह गौर,अम्बिका प्रसाद भटट, शिव मंगल सिंह सुमन, गंगा प्रसाद पाण्डेय,भैरवदीन जगदीश चन्द जोशी आदि,साहित्य के माध्य से देश वासियों के मन में देश प्रेम की भावना जगाने का भरपूर प्रयास किया है।

जेउन धरती पर हम जन्मेन, हाथ जोड़कर हवै प्रनाम ।
वीर बघेली माटी अपने, नाम गाँव का है परनाम ।।
जब तक एकौ बेटवा बिटिया के हाथे मा रहे दुनाल्ली।
कौउनेउ बइरी कैन होई, कबहु इहा बडेरी काली ।।

****

हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री की दशा

डॉ. दीपा अंटिन

प्रस्तावना:-भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा हैI नारी यह शब्द सुनने और लिखने में एक ही लगता है, किन्तु गौर करे तो वही नारी के कई रूप दिखने लगते हैंI वह माँ,बहन,बेटी,बहु,सास,दादी,नानी और भी कई किरदार निभाती हुई दिख पड़ती हैI वैसे देखा जाए तो वाही परिवार की नीवं हैIपरिवार,समाज,देश के निर्माण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैI इसलिए तो कहा गया है"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते,तत्र: देवताःI"

बीसवी सदी के अंतिम चरण तथा इक्कीसवी सदी के पूर्वार्ध में हम सभी का जीवन अनेक समस्याओं का शिकार बन चुका हैIएक सुन्दर और स्वस्थ जिन्दगी तो एक तरह से मोहताज़ बन चूका हैIविविध समस्याओं के साथ जुझना हमारी नियति बन चुकी हैI इसमें पुरूषों की अपेक्षा नारी ही अधिक शिकार बनी हुई हैI

पुरुष प्रधान देश में समय-समय पर संस्कृति के आड़ में नारी की शोषण ही करता रहा हैI बदलते समय के साथ-साथ परिवेश बदला,समय भी बदला नारी संवेदन और शोषण में भी परिवर्तन आ गयाI यही परिवर्तन साहित्य में दिखाई देने लगाI हिन्दी साहित्य एवं मनोविज्ञान का परस्पर संबंध है,साहित्य मानव मन का सूक्ष्म अध्ययन एवं विश्लेषण करता हैI मनोविज्ञान उपन्यासकार और कहानीकार का उद्देश्य चेतना के शुध्ह ,मौलिक तथा अनगड़े स्वरुप को उपस्थित करना होता हैIकिन्तु आज के मनोविज्ञानिक युग में असंतोष,असहिष्णुता एवं प्रचलित रूचि कहा जा रहा है-इस तरह के उपन्यासों और कहानियों में समस्याग्रस्थ व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाले पात्रों का सम्यक ज्ञान पा लेना ही नयी पीढ़ी के पाठकों की एक जटिल और अनिवार्य समस्या हैI हिन्दी के कई दिग्गज लेखकों जैसे प्रेमचंद,प्रसाद,जैनेन्द्र, उषा प्रियंवदा,मालती जोषी,कुसुम अंसल,तथा उषा अग्निहोत्री,महादेवी वर्मा,मन्नू भंडारीजी ने हिन्दी साहित्य के कहानी और उपन्यास साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैIमहादेवी वर्मा नारी महिमा को अपनी परिभाषा के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहती है,"नारी केवल मांसपिंड की संज्ञा नहीं हैI आदिम काल से आज तक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर उसकी यात्रा को सरल बनाकर,उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर,मानवी ने जिस व्यक्तित्व,चेतनाऔर ह्रदय का विकास किया है उसी का पर्याय नारी हैI" इस परिभाषा से स्पस्ट होता है की नारी जाती स्नेह और सौन्दर्य की साक्षात देवी है वह नर-पशु को मनुष्य बनाती है तथा अपनी वाणी से जीवन को अमृतमयी बनती है,उसके नेत्र में आनंद का दर्शन होता है वह संतप्त ह्रदय की शीतल छाया है,उसके हास्य में निराशा मिटाने वाली अपूर्व शक्ति हैI.इतना होकर भी पुरुष ने उसके साथ प्रेम का व्यवहार नहीं किया बल्कि उसको घुटन भरी जिन्दगी दे दियाI जिसको हम अनेक कहानी और उपन्यासों में देख सकते हैंI कृष्णा अग्निहोत्रीजी ने अपनी कहानी "एक भटकता मन" में एक ऐसी पत्नी का चित्रण किया है जिसके जीवन में पति प्रेम के आभाव ने ख़ामोशी भर दी है.वह है वर्षाI वर्षा के कितने भी बार समझाने से उसका पति उसको अधुरा ही छोड़ देता हैI प्यार के आभाव में उसका मन भटकता ही रहाIलेखिका ने यंहा वर्षा के भटकते मन का समाधान नहीं कियाI हो सके तो देवेन्द्र जो वर्षा से आकर्षित था उसके साथ विवाह कर सकती थी पर शायद अपने कटु अनुभवों ने उन्हें इसा करने नहीं दिया होगा I कुसुम अंसल के उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान के नए आयाम रेखांकित हुए है,इसमें महानगर के मध्य- वर्गीय परिवारों में उत्पन युवतियों की कहानियां है जो अपनी जिन्दगी में कुछ करना चाहती हैI यह नारी उन्मुक्त जीना चाहती है,समाज और अपने परिवार से लडती है, टूटती है,और फिर आगे बढ़ती हैIयह नारियां जीवन की हर पढ़ाव पर समझौता करना चाहती हैI यौन वर्जनाओं के घेरे को स्वीकारने और नकारने की पीढ़ासे ग्रस्त हैIकुसुम अंसल की उपन्यास "उदास आंखे" की सुपर्ण जिसको अपने कॉलेज के लडको के नाम के साथ दीवारों पर उसका नाम कुछ लडको के द्वारा लिखा जाना,सुपर्णा के पोस्टर जगह जगह चिपकाना,वह जहां से भी गुजरती है वहाँ पर उसको ताने मारना,लडको के द्वारा करवाए जानेवाले कामों को चुपचाप करते जाना,इससे वह अन्दर ही अन्दर घुटनशील बनती चली जाती हैI

कुसुम अंसल की और एक कहानी "गवाह" में नायिका अपने ससुराल में घुतानशील का एहसास करती है,बीमार ससुर,और कमजोर सासकी सेवा और दफ्तर में बॉस की नज़र से बचती फिरती हैIपर जब मेमोरंडम दिया जाता है तब वह अपनी नौकरी बचने केलिए अपने बॉस के बताये होटल जाती है और पत्थर सी बनी वह सोचती है की यथार्थ हमेशा आदर्शवादी जीवन से अलग होता हैIस्पस्ट है की औरते अपने वैवाहिक जीवन में संघर्षशील होकर भी समाज की भूख बनकर पीड़ित समाज की सेवा में झटकर

संघर्षशील जीवन को आनंदमयी बनाने की कोशिश में लगी रहती हैIआज विवाह एक धार्मिक संस्कार न होकर एक समझौता मात्र रह गया हैIवर्तमान युग में विवाह संस्था टूटने की कगार पर हैIइसीलिए तो "रेखाकृति" उपन्यास में नैना मालविका से जीवन अनुथल विषाद करती हैIपरित्यक्ता नैना कहती है-"शादियाँ करतें हैं,लड़तें है,मार-पीटकरते है,बच्चे जनते हैं,और फिर अलग हो जातें हैं"इससे नारी की टूटनशीलाता में विभिन्न पहलूओं के दर्हन कराकर लेखिका ने अपनी प्रयोग धर्मिता का अच्छा परिचय हमें कर दियाI

कभी अपनी संतान केलिए,कभी गृहस्थी को बचने केलिय,कभी मर्यादा केलिए,कभी माता-पिता की ख़ुशी केलिए अपने स्वयं की सपनों की समाधी बना डालती हैI

उपसंहार:- हिन्दी कहानी और उपन्यास साहित्य में महिला कहानीकारों ने महिला की दुर्दशा का चित्रण बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किए हुए हैं,शोषित नारी,घुतानशीलता से भरी हुई नारी,नौकरीपेशा नारी,महानगरों में संघर्षमय जीवन बितानेवाली नारी,परिवार से अलग होकर या परिवार में ही रहकर तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली नारी इन सभी के दुखो में कही न कही इनके परिवार वाले भी शामिल होतें हैंIए सभी नारी की सहायता करने के बदले में उसकी उपेक्ष ही करते हैIकुलमिलकर कहा जाए तो नारी सदियों से पुरूषों का वासना का शिकार बनती आ रही हैI आज आधुनिक युग में शिक्षा और कानून के प्रभाव से नारी सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ कंधे से कन्धा मिलकर चलती हुई तो नज़र आती है पर अभी भी वह कही न कही डरी-सहमी सी ही नज़र आती हैI

प्रकृति ने तो नर-नारी उनके ही विशेष गुणों से नवाज़ा है I बस, समाज की मानसिकता को बदलने की आवश्यकता हैI सही में पाठको को भी इसके बारे एक बार सोचना अवश्य चाहिए की यह असमानता किस हद तक सही है?

****

संदर्भ ग्रंथ--नारी मनोविज्ञान

The Role of Special Economic Zones (SEZs) in Export Promotion of India

Pooja Gupta
Assistant Professor
Department of Economics, School of Social Sciences,
IFTM University, Moradabad

Abstract: ***In this era of globalization every country is adopting the policy of import substitution and export Promotion. For the export promotion many countries adopted the policy of Special Economic Zones (SEZ). It was believed that the SEZ are the instrument of export promotion, earners of foreign exchange, stimulation of employment and foreign investment. Special economic zones concept has evolved across the globe and several developing countries like India have adopted this policy for set-up of industrial zones that focus on exports and helps in generating economic opportunity and able to attract Foreign direct investment. So SEZs can be defined as a geographically delimited area which is physically secured, has single window clearance system, less complicated administrative unit. In this paper, an attempt is made to review the concept of Special Economic Zone and its impact on the exports from India. The study is also covered the various problems related with the SEZs and solutions to resolve it. Also give some suggestions to improve the condition of SEZs and export promotion in India.***

Keywords: Special Economic Zones, Export Promotion, Foreign Exchange, Investment etc..

Introduction-India has progressively risen to become one of the world's key actors in the dynamic realm of international trade. The nation's aggressive attitude to promoting exports is in large part responsible for its economic strength. Special Economic Zones (SEZs) are one of the key instruments powering this expansion. These designated zones, distinguished by their distinctive infrastructure and regulatory frameworks, have been crucial in accelerating India's export growth.

A Special Economic Zone (SEZ) is a place with economic laws that are more lenient than those generally found in a nation. Free Trade Zones (FTZ), Export Processing Zones (EPZ), Free Zones (FZ), Industrial Estates (IE), Free Ports, Urban Enterprise Zones, and other more specialized zone types are included in the category "SEZ."An SEZ structure typically aims to improve exports, provide jobs, and attract more foreign investment. Shenzhen, China's most prosperous Special Economic Zone, grew from a small village to a city with a population of over 10 million people in just 20 years.Special Economic Zones have been formed in a number of nations, including Brazil, India, Iran, Jordan, Kazakhstan, and Pakistan, following the Chinese precedents. The establishment of Special Economic Zones (SEZs) has been a fundamental policy of the Ministry of Commerce and Industry (MOCI), GoI, with India positioned to become the third largest global economy by 2030. These zones are geographical areas where a unique legal framework enables more lenient laws than those in effect throughout the rest of the nation. Free trade zones (FTZs), export processing zones (EPZs), free zones, industrial estates, free ports, and enterprise specific zones are only a few of the more specialized types of zones that fall under the umbrella term "SEZs."

SEZs were created to draw in foreign direct investment, produce jobs, build infrastructure, and make it easier to transfer technology and get access to the international market. Therefore, the goal is to create an environment that is hassle-free and competitive globally to promote exports. The Government of India announced its SEZ policy in 2000 and passed the SEZ Act in 2005 with this objective in mind. The SEZ Act's objectives included building an integrated infrastructure for export production, providing a package of incentives to entice foreign and domestic investment, and fostering employment opportunities.

Objectives of the Study:

The study's main objectives are to:

- Review the concept of Special Economic Zones (SEZ)
- Analyze the various problems, solutions and importance of Special Economic Zones for export promotion in Indian Economy.

Literature Review:-

Pakdeenurit (2014),The study covers the viewpoints of three key nations at the forefront of zone operations: India, the largest zone operator in the world, Chinese SEZ Shenzhen, the pioneer of special economic zones (SEZ), and the United States, which invented the concept. The study comes to the conclusion that SEZ policies were adopted by developing nations starting in the middle of the 20th century to enable key developmental initiatives like expanding employment opportunities, boosting foreign exchange, and promoting exports.Anita and Niraj (2016), made sure in their study that the zones do not use an excessive amount of scarce government resources; rather, they should serve as a breeding ground for the development of new skills and create income for the

government to fund development projects. SEZs are also a part of an economy, and these enclaves can't run effectively if there are supply bottlenecks, thus the country needs to enhance the investment climate of the country in order to attract more FDI. The government must establish environmental laws for SEZs and include local governments and bodies in SEZ governance.Kumari, B. (2018), According to her SEZs aid in the development of employment opportunities, draw FDI, and boost Indian exports. Currently, 1688.34 thousand individuals nationwide work in SEZs. In 2017, FDI in SEZs was 433142 crores, while in 2016, the export output from SEZs was 467337 crores, or 19.88% of India's total exports.

Meaning of Special Economic Zones (SEZ)

Special Economic Zones are geographically isolated regions inside a nation that are governed by unique economic laws and policies. Their main goals are to promote exports, encourage foreign investment, advance industry, and create jobs. The SEZ policy in India was initially launched in 2000 with the intention of emulating the success of similar zones in nations like China and Taiwan. SEZs have developed into thriving centers for trade, services, and manufacturing over time.

Special Economic Zones (SEZs) Objectives

An SEZ's goals include boosting exports, boosting foreign investment, creating jobs, and advancing regional development. According to the government, the main goals of the SEZs are to:

a) Generate additional economic activity;
b) Promote exports of goods and services;
c) Promote investment from both domestic and foreign sources;
d) Create employment opportunities; and
e) Develop infrastructure facilities.

Strengthening Export Promotion By SEZs

SEZs has had a significant impact on India's export promotion efforts in a number of ways:

1.Tax Benefits: One of the SEZs' most alluring characteristics is the considerable tax benefits provided to companies operating there. These incentives include temporary exemptions from income tax, excise taxes, and customs tariffs. These tax breaks lower the cost of producing products and services, increasing their ability to compete on global markets.

2.World-class Infrastructure: SEZs have access to cutting-edge infrastructure, including as technology parks, logistics hubs, and industrial parks. Companies may increase productivity, lower operating expenses, and maintain high levels of quality thanks to this infrastructure.

3.Streamlined Regulator Framework: A more straightforward and business-friendly regulatory framework is advantageous for SEZs. This makes it easier for businesses to get through administrative roadblocks, which leads to quicker approvals, licenses, and permits. This simplified procedure facilitates international business establishment in India.

4.Export-Oriented Units (EOUs): Export-Oriented Units are granted exceptional rights within SEZs, such as the ability to import capital goods and raw materials without having to pay customs charges. This encourages domestic value addition and raises the exports of India's competitiveness.

5.Foreign Direct Investment (FDI): SEZs have demonstrated their ability to draw foreign direct investment (FDI) like a magnet. The welcoming environment for investments, good infrastructure, and tax advantages provided in these zones all appeal to foreign businesses. The promotion of exports is directly benefited by this FDI inflow.

6.Employment Opportunities: SEZs significantly increase the number of employment opportunities. Jobs for skilled and unskilled labor are created by the expansion of the manufacturing, service, and related businesses inside these zones, which supports general economic growth.

7.Diversified Export Portfolio: SEZs are home to a variety of businesses, from textile and pharmaceutical production to information technology and IT. India's export portfolio is strengthened by this economic diversification, making it more resilient to changes in the global market.

Challenges and the Way Forward-Although SEZs have been crucial in promoting exports, they have encountered difficulties such as problems with land acquisition, infrastructure constraints, and worries about equitable development. Policymakers must address these issues by ensuring that SEZs are created in a sustainable and inclusive manner in order to maximize their benefits. In several nations, including India, Special Economic Zones (SEZs) have proved crucial in stimulating economic growth and promoting exports. Their development and success, nevertheless, may run into a number of obstacles and issues. Here are some typical problems related to the creation of SEZs:

1.Land Acquisition: Purchasing land for SEZs can be a controversial matter, especially in places with a high population density. Local communities are frequently uprooted, which can cause social upheaval and legal challenges. It can be difficult to strike a balance between the necessity for economic development and the rights and livelihoods of those who will be impacted.

2.Regulatory Obstacles: SEZs are subject to a separate

set of rules than the rest of the nation. For firms, managing and following these regulations can be challenging. Investors may become uncertain as a result of frequent changes to laws and regulations.

3.Bureaucratic Red Tape: The approval procedure for licenses, permits, and clearances can be slowed down by administrative procedures and bureaucratic obstacles. For SEZs to draw investors and encourage ease of doing business, a streamlined, effective, and transparent approval process is essential.

4.Sustainability Issues: SEZs occasionally come under fire for their effects on sustainability, including problems with pollution, water consumption, and land degradation. It is extremely difficult to balance corporate development with environmental sustainability.

5.Equity and Inclusive: While SEZs can aid in economic expansion, it is uncertain whether all facets of society will gain equally. A significant difficulty is ensuring that the progress brought about by SEZs benefits local populations and is inclusive.

6.Export Dependence: SEZs that depend too heavily on exports may be more susceptible to changes in the world economy. The expansion and stability of SEZs can be significantly impacted by economic downturns in export destinations.

7.Competition Among SEZs: There may occasionally be fierce competition between several SEZs, which can result in inefficiencies and effort duplication. It might be difficult to coordinate and rationalize the growth of SEZs in an area.

8.Global Economic Uncertainty: The state of the world's economy has a significant impact on SEZs. The demand for goods made in SEZs may be impacted by trade disputes, protectionist measures, and world economic crises.

9.Labor Issues: It can be difficult to attract and keep skilled workers, particularly if there is a mismatch between the skills required by the industries in SEZs and the skills present in the local labor pool.

10.Infrastructure Upkeep: For SEZs to have continuous growth, it is crucial to maintain and upgrade their infrastructure. If this component is neglected, facilities may deteriorate and competitiveness may suffer.

Solutions to Reduce these Problems

Governments and policy makers must take a comprehensive approach to overcoming these obstacles and ensuring the SEZs' continued growth. This entails delicately handling land acquisition concerns, enhancing infrastructure construction, maintaining a supportive regulatory framework, supporting environmental sustainability, and encouraging equitable growth. Additionally, continuous monitoring and evaluation of SEZ performance can aid in quickly identifying and resolving new problems.It takes a multifaceted strategy to reduce the concerns with Special Economic Zones (SEZs), including resolving issues with land acquisition, infrastructure, regulations, sustainability, and inclusivity. Here are few recommendations to help address these issues:

1.Land Acquisition Transparency: Ensure fair and transparent land acquisition procedures with sufficient compensation for impacted communities. Consult with local stakeholders in a meaningful way to address their issues and offer appropriate rehabilitation methods.

2.Efficient Infrastructure Development: Give roads, ports, power supplies, and digital connection a high priority within and surrounding SEZs. Set aside enough money and resources for infrastructure projects, and follow strict deadlines to prevent delays.

3.Stable Regulatory Environment: Keep the SEZ regulatory environment steady and predictable. To give investors a sense of security, frequent changes in laws and regulations should be minimized.

4.Streamlined Administrative Processes: Cut down on bureaucratic red tape and simplify administrative procedures. Implement single-window clearance procedures to hasten the issuance of SEZ-specific licenses, permits, and approvals.

5.Inclusive Growth: Development of policies to encourage inclusive growth within SEZs. Encourage companies to fund training and skill-development initiatives for regional residents. Establish procedures to guarantee that underprivileged communities directly receive a share of the benefits from SEZs.

6.Environmental Sustainability: In SEZs, encourage sustainable practices and enforce strict environmental requirements. Promote the use of eco-friendly technologies and make sure environmental laws are followed.

7.Diversification of Industries: Encourage the diversification of industries within SEZs to lessen overdependence on a single industry. This may make SEZs more resilient to changes in the economy.

8.Export Diversification: Promote the diversification of export destinations to lessen reliance on a select few markets. Examine chances to extend the export portfolio and access new markets.

9.Investment Supported Policies: Investment-friendly Regulations Make SEZs more competitive globally by providing investors with alluring incentives and tax benefits. Make certain that these incentives are transparent and consistent.

10.Monitoring and Evaluation: To routinely evaluate the performance of SEZs, establish a strong monitoring

and evaluation structure. To quickly detect and address developing challenges, use data-driven insights.

11.Labor Development: Work with educational institutions to match the local workforce's capabilities to the demands of the SEZs' industrial sectors. Spend money on training and development initiatives to increase the employability of locals.

12.Cluster Development: Encourage the clustering of related industries within SEZs to promote economic development. Synergies, higher production, and simpler access to suppliers and clients may result from this.

13.Infrastructure Upkeep: Create a long-term plan for the upkeep and improvement of the infrastructure inside SEZs. Facilities can stay functional and avoid degradation by receiving regular maintenance.

14.Coordination Among SEZs: Promote collaboration and coordination among the many SEZs in the area to prevent duplication of effort and guarantee effective resource use.

15.Global Engagement: Engage actively with international markets, trade associations, and foreign investors to draw capital and broaden the scope of SEZs.

16.Flexibility: SEZ policies should be made flexible to account for shifting market dynamics and changing business requirements.

Suggestions to improve SEZs for Export Promotion

- The government ought to work toward removing the need for import and export licenses, streamlining the requirements for investment approvals and foreign worker work permits, and speeding up custom inspection processes and automated foreign exchange access.
- Given that the zones receive unique incentives and other facilities, particular consideration should be given to multi-product SEZs in order to maintain and promote the country's varied traditional exports.
- The Government of India should support Special Agricultural Zone (SAZ) to encourage farmers to adopt cutting-edge technologies for better amenities in the specifically designated zones. In 2011, Uttarkhand became the first state in the nation to establish SAZ.
- Agriculture should not be transferred to Special Economic Zones by the government. Farmers and food production suffer as a result. India is a populous country, so food security is a big problem.
- The person who lost their land to SEZs should be offered employment. They need to be properly employed and provided technical training.

For investors and developers, the SEZ policy and laws have provided a very favorable investment environment. To encourage investors and developers to

- make additional investments, which will, in turn, have a favorable impact on the expansion of the SEZs, a variety of tax perks and incentives have been offered.
- Governments and policymakers can help minimize the issues related to SEZs and support their sustainable expansion by putting these recommendations into practice and maintaining a balanced approach, thereby assisting in economic development and export promotion.

Conclusion-

It goes without saying that Special Economic Zones have played a significant role in fostering new economic activity at the national level. The standards of working conditions within the zones should not be compromised in order to achieve the SEZ's export and job creation goals. SEZs are also a part of an economy, and these enclaves can't run effectively if there are supply bottlenecks, thus the country needs to enhance the investment climate of the country in order to attract more FDI.

****

References:

1. The Special Economic Zones Act, 2005.
2. India, Ministry of Commerce and Industry, Department of Commerce, Annual Report, 2019-20.
3. Government of India, Ministry of Commerce & Industry, Department of Commerce, Special Economic Zones in India, Homepage – www.sezindia.gov.in
4. World Bank; Special Economic Zones: Progress, Emerging Challenges and Future Directions (Thomas Farole, Gokhan Akinci, eds.), 2011, Washington DC.
5. Global Entrepreneurship Index, 2019, the Global Entrepreneurship and Development Institute, Washington.
6. Aggarwal, A. (2012); Social and Economic Impact of SEZs in India, (Oxford University Press: New Delhi.
7. Soundarapandian, (2012). Development of Special Economic Zones in India (Concept Publishing Company Pvt. Ltd: New Delhi), . Vol. I - Policies and Issues; Vol. II - Impact and Implication.
8. Tantri, Malini L, (2016). Special Economic Zones in India: Policy, Performance and Prospects, 2016, Cambridge University Press: Delhi.

Transforming Teacher Education: The Implications of India's National Education Policy 2020

Dr. Rajkumari Gola
Assistant Professor
Department of Education
IFTM University, Moradabad

Abstract:-The paper delves into the transformative effects of India's National Education Policy (NEP) 2020 on the landscape of teacher education within the nation. NEP 2020, an ambitious initiative introduced by the Indian government, aspires to revolutionize India's education system, with a particular focus on the facets of teacher education. The NEP 2020 introduces several noteworthy changes to teacher education, primarily the introduction of a four-year integrated B.Ed. program. This program places significant importance on pedagogical training and hands-on experience, ensuring that future educators are well-equipped for the classroom. Additionally, the policy encourages continuous professional development for teachers, fostering a culture of lifelong learning among educators. The examination of India's National Education Policy 2020 reveals its far-reaching impact on teacher education in the country. By emphasizing quality, innovation, and inclusivity, the NEP 2020 is reshaping teacher education to meet the evolving educational needs of India, ultimately contributing to a more effective and responsive education system.

Key Words: Teacher Education, National Education Policy, Universalization, Vocational and Holistic education.

Introduction:-Education is the cornerstone of a nation's progress, and teachers are its architects. Recognizing the critical role of education in shaping the future of India, the government unveiled the National Education Policy (NEP) 2020, a historic document that outlines a visionary roadmap for the country's education system. Among its many facets, the National Education Policy 2020 brings about a paradigm shift in teacher education. In this comprehensive article, we will delve into the National Education Policy 2020 with a specific focus on teacher education. We will explore its objectives, key provisions, and the potential impact it may have on the quality of teaching and learning in India.

1. Understanding the National Education Policy 2020

1.1 The Context:-India's education system has undergone several reforms over the years, but the need for a comprehensive overhaul became increasingly evident. The National Education Policy 2020, introduced by the Ministry of Human Resource Development (now the Ministry of Education), was crafted to address the shortcomings and challenges of the existing education system. It aims to bring about transformative changes that align with global standards while preserving the country's cultural and social values.

1.2 Key Objectives National Education Policy 2020:

The National Education Policy 2020 is underpinned by several key objectives:

1.2.1 Universalization of Education:-The National Education Policy (NEP) 2020, a transformative and forward-looking document, places a strong emphasis on the universalization of education in India. Universalization of education means ensuring that every child in the country, regardless of their background, has access to quality education from early childhood through higher education. In the context of NEP 2020, universalization of education encompasses several key aspects and principles:

Early Childhood Care and Education (ECCE): NEP 2020 recognizes the critical importance of early childhood education and aims to provide every child between the ages of 3 to 6 with access to quality ECCE. This foundational stage of education is seen as a crucial building block for a child's lifelong learning journey.

Access to School Education: The policy aims to ensure that every child has access to a quality school education. It emphasizes reducing dropout rates and increasing enrollment, particularly for marginalized and disadvantaged communities. Special attention is given to children with disabilities, ensuring inclusive education for all.

12 Years of School Education: NEP 2020 proposes a restructuring of the school curriculum by extending it to 12 years, following a 5+3+4 structure (5 years of foundational, 3 years of preparatory and 4 years of middle school). This provides a more comprehensive and age-appropriate learning experience for students.

Vocational Education: The policy recognizes the diverse talents and interests of students and promotes vocational education and skills training from an early age. This allows students to explore a wide range of career options and ensures that education is not solely focused on academic pursuits.

Multilingual Education: NEP 2020 acknowledges India's linguistic diversity and promotes multilingualism in education. It suggests that students should be encouraged to learn in their mother tongue or regional language,

while also being exposed to other languages for broader communication and cognitive development.

Flexible Learning: The policy advocates for flexibility in the education system to accommodate various learning styles and paces. It promotes a shift from rote memorization to experiential and holistic learning approaches.

Equity and Inclusion: NEP 2020 places a strong emphasis on equity and inclusion, addressing disparities in educational access and quality across different regions and social groups. Special measures are proposed to ensure that children from disadvantaged backgrounds receive adequate support.

Digital Education: Recognizing the role of technology in education, the policy emphasizes the integration of digital technologies to reach students in remote and underserved areas. It envisions a blended learning approach, combining online and offline resources.

Teacher Training: The policy recognizes that teachers are central to achieving universalization of education. It calls for the continuous professional development of teachers to equip them with the necessary skills and knowledge to cater to diverse student needs.

Assessment Reforms: NEP 2020 advocates for a shift in assessment practices, moving away from high-stakes examinations to a more holistic and competency-based assessment system. This reduces the undue stress on students and encourages a focus on learning rather than rote memorization.

Higher Education Access: The policy aims to increase access to quality higher education by expanding and diversifying higher education institutions. It encourages the establishment of new universities and colleges in underserved areas and promotes online education options.

1.2.2 Ensuring Quality and Relevance: Education serves as the bedrock of a nation's progress and development, shaping the future of its citizens and significantly influencing its economic and social well-being. In this context, India's National Education Policy (NEP) 2020, introduced by the government, marks a notable departure in the nation's educational approach. A cornerstone of this policy is the commitment to ensuring the quality and relevance of education, a goal of paramount importance in a world characterized by rapid change and global interconnectivity.

Holistic Education: NEP 2020 underscores the significance of holistic education. It acknowledges that students are not passive recipients of knowledge but individuals with diverse interests and aptitudes. To enhance quality and relevance, the policy promotes a multidisciplinary approach to education, allowing students to explore various subjects and cultivate a well-rounded perspective. This shift aligns education with the demands of the 21st century, which places a premium on interdisciplinary knowledge and skills.

Skill Development: The policy places a strong emphasis on skill development, with the aim of preparing students to be job-ready and entrepreneurial. By integrating vocational education and internships into the curriculum, NEP 2020 seeks to bridge the chasm between theoretical knowledge and practical application. This approach augments the relevance of education and equips students to meet the evolving demands of the job market.

Flexible Learning Pathways: Recognizing the uniqueness of every student, NEP 2020 introduces flexibility into the education system. The policy advocates for multiple entry and exit points, empowering students to chart their own learning paths. This ensures that education is not a one-size-fits-all model but rather one tailored to individual needs and aspirations, thus elevating its relevance and quality.

Quality Assurance Mechanisms: To ensure and enhance the quality of education, NEP 2020 puts forth several quality assurance mechanisms. It underscores the importance of standardized assessments, teacher training, and continual monitoring of educational institutions. These measures aim to guarantee that educational institutions deliver high-quality learning experiences and remain pertinent in a rapidly evolving world.

Digitalization and Technology Integration: In an age dominated by digital technology, the policy acknowledges the crucial role of technology in education. It encourages the seamless integration of technology into teaching and learning processes, rendering education more engaging and accessible. By harnessing digital tools and online resources, NEP 2020 enriches the relevance of education and prepares students for the digital era.

Promoting Research and Innovation: To remain globally relevant, a strong emphasis on research and innovation is essential. NEP 2020 actively promotes research-oriented education and fosters a culture of innovation in educational institutions. By championing research and development, the policy ensures that education remains at the vanguard of knowledge and technology.

Inclusivity and Diversity: NEP 2020 recognizes the pivotal role of inclusivity and diversity in education. It champions a more inclusive and equitable education system, guaranteeing that quality education is accessible to all, regardless of their background. This approach not only enhances the relevance of education but also fortifies the social fabric of the nation.

1.2.3 Promoting Research and Innovation: The National Education Policy (NEP) 2020, introduced by the

Government of India, marks a significant milestone in the country's education landscape. Among its many objectives, NEP 2020 places a strong emphasis on promoting research and innovation across all levels of education. This policy recognizes that research and innovation are critical drivers of economic growth, societal progress, and global competitiveness. Let's delve into the key aspects of how NEP 2020 is fostering a culture of research and innovation in India.

Multidisciplinary Approach: NEP 2020 advocates a multidisciplinary approach, encouraging students to explore diverse fields of knowledge. This approach is vital for fostering innovation, as groundbreaking ideas often emerge at the intersection of different disciplines. By allowing students to pursue a broader range of subjects, the policy cultivates a fertile ground for innovation to flourish.

Flexibility in Curriculum: The policy promotes flexible curricula that enable students to choose from a wide array of subjects. This flexibility encourages students to follow their passions and explore areas of interest. This, in turn, can lead to innovative ideas and solutions, as students are more likely to excel in areas they are genuinely passionate about.

Research-Oriented Universities: NEP 2020 envisions the transformation of select universities into research-oriented institutions. These universities will prioritize research and innovation, providing a conducive environment for scholars and students to engage in cutting-edge research. Such institutions will attract top talent and foster a culture of innovation.

Promotion of Critical Thinking: The policy places a strong emphasis on developing critical thinking and problem-solving skills. These skills are essential for innovation as they enable individuals to identify and address complex challenges effectively. NEP 2020's focus on experiential and inquiry-based learning methods contributes to this goal.

Encouragement for Startups: NEP 2020 recognizes the importance of startups and entrepreneurship in driving innovation and economic growth. It encourages educational institutions to establish incubation centers and entrepreneurship cells to support students in developing innovative ideas into viable businesses.

Research Funding: The policy acknowledges the need for increased funding in research and development. It aims to allocate a higher percentage of GDP to research and innovation, ensuring that resources are available to support research projects across various disciplines.

International Collaboration: NEP 2020 encourages I ternational collaboration in research and innovation. This can lead to knowledge exchange, access to global expertise, and exposure to different research methodologies, enriching the research ecosystem in India.

Promoting Indigenous Knowledge: The policy emphasizes the preservation and promotion of indigenous knowledge systems. Recognizing the value of traditional wisdom, NEP 2020 encourages research that bridges the gap between traditional and modern knowledge, fostering innovation rooted in India's rich heritage.

Teacher Training and Development: NEP 2020 recognizes the role of educators in nurturing a culture of research and innovation. It emphasizes continuous teacher training and professional development, ensuring that educators are equipped to inspire and guide students in their research endeavors.

1.2.4 Holistic Development: Fostering holistic development by emphasizing the importance of values, ethics, and skills.

1.2.5 Flexible and Multidisciplinary Education: Providing flexible and multidisciplinary education options to students for a more well-rounded learning experience.

2. Teacher Education in the National Education Policy 2020

2.1 The Importance of Teacher Education:-Teacher education is a linchpin in the education system, influencing the quality of instruction and learning outcomes. The National Education Policy 2020 recognizes the pivotal role of teachers in shaping the future generation and, therefore, has dedicated an entire section to teacher education reforms.

2.2 Key Provisions:-The National Education Policy 2020 introduces several noteworthy provisions and reforms in teacher education:

2.2.1. Four-Year Integrated B.Ed. Program: One of the most significant changes is the transformation of the traditional Bachelor of Education (B.Ed.) program into a four-year integrated program. This aims to provide prospective teachers with a more comprehensive and holistic understanding of pedagogy, subject knowledge, and practical classroom experience.

2.2.2. Multidisciplinary Approach: The National Education Policy 2020 encourages a multidisciplinary approach in teacher education. It suggests that teachers should be equipped with a broader understanding of subjects and interdisciplinary perspectives to be more effective educators.

2.2.3. Continuous Professional Development: To keep teachers updated with the latest teaching methodologies and pedagogical advancements, the policy emphasizes continuous professional development through regular

training programs and workshops.

2.2.4. Teacher Recruitment and Accountability: The National Education Policy 2020 also addresses the issue of teacher recruitment and accountability. It suggests the implementation of rigorous teacher recruitment processes to ensure that only qualified and competent individuals enter the teaching profession.

2.2.5. Focus on Technology: In the digital age, technology has become an integral part of education. The policy encourages the integration of technology in teacher education to equip teachers with digital literacy skills and effective online teaching methods.

3. Impact of National Education Policy 2020 on Teacher Education

3.1 Strengthening the Teaching Profession:-The National Education Policy 2020 has the potential to significantly strengthen the teaching profession in India. By extending the duration of teacher education to four years and emphasizing a multidisciplinary approach, it can produce better-prepared educators. This, in turn, can lead to improved teaching quality and enhanced learning outcomes for students.

3.2 Fostering Innovation and Research:-The policy's focus on research and innovation is not limited to students but extends to teachers as well. With an emphasis on continuous professional development and the integration of technology, teachers can become active participants in educational research and innovation. This can lead to the development of new teaching methods and materials that cater to diverse learning needs.

3.3 Bridging the Urban-Rural Divide:-One of the National Education Policy 2020's core objectives is to bridge the urban-rural education divide. By promoting quality teacher education in rural areas and incentivizing teachers to work in underserved regions, the policy can help equalize educational opportunities across the country.

3.4 Encouraging Lifelong Learning-The National Education Policy 2020's commitment to continuous professional development promotes lifelong learning among teachers. This not only enhances their skills but also sets a positive example for students, emphasizing the importance of learning throughout one's life.

4. Challenges and Concerns

4.1 Infrastructure and Resources:-Implementing the National Education Policy 2020's vision for teacher education will require substantial investments in infrastructure, faculty training, and resources. Ensuring that all teacher education institutions have the necessary facilities and expertise may pose a logistical challenge.

4.2 Standardization and Quality Assurance:

Maintaining uniform standards of teacher education across the country is crucial. Ensuring that all teacher education programs adhere to high-quality benchmarks and regularly evaluating their effectiveness is a complex task that requires robust mechanisms for quality assurance.

4.3 Faculty Development:-The transformation of teacher education necessitates the development of a highly skilled and motivated faculty. Recruiting and training faculty members who can deliver the new curriculum effectively may pose a challenge.

4.4 Inclusivity and Diversity:-While the National Education Policy 2020 emphasizes inclusivity and diversity, implementing these principles in teacher education institutions may require focused efforts to overcome biases and ensure that all students, regardless of their background, receive a fair and equitable education.

5. Conclusion-The National Education Policy 2020 is a visionary document that has the potential to revolutionize education in India. Its emphasis on teacher education is a testament to the critical role teacher's play in shaping the future of the nation. By introducing reforms such as the four-year integrated B.Ed. program, a multidisciplinary approach, and continuous professional development, the policy aims to produce a cadre of highly qualified and motivated educators. However, the successful implementation of these reforms hinges on overcoming various challenges, including infrastructure development, quality assurance, and faculty training. Nevertheless, if executed effectively, the National Education Policy 2020 can usher in a new era of educational excellence in India, where teachers are better prepared, more innovative, and committed to nurturing the next generation of thinkers and leaders. In conclusion, the National Education Policy 2020 is a significant step toward realizing India's educational aspirations, and its impact on teacher education could be transformative, ultimately leading to a brighter future for the country.

Furthermore, NEP 2020 aims to elevate the quality of teacher education by advocating for increased research, innovation, and multidisciplinary approaches. Embracing technology integration in teaching and learning is another vital aspect, which promises to create a more dynamic and engaging educational environment. The policy also recognizes the necessity for improved teacher recruitment processes, with the goal of attracting highly qualified and motivated individuals into the teaching profession. Diversity and inclusivity in teacher education are emphasized, with a strong focus on training teachers to effectively address the diverse needs of students.

References:-

1. 'Arya', Mohan Lal (2020), "Role of Emerging Technologies and ICYs in Teaching Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 10, issue 38, pp. 108-111.
2. 'Arya', Mohan Lal (2021), "An Analytical study of Flipped Learning Approach", Strad Research, vol. 8, issue 11, pp. 325-333.
3. 'Arya', Mohan Lal (2023), "A Study of Impact of Modern Technologies on Society", Naagfani, vol. 13, issue 44, pp. 90-93.
4. 'Arya', Mohan Lal (2023), "New Education Policy 2020: A Educational study", Jyotirveda Prasthanam, vol. 12, issue 2, pp. 89-93.
5. 'Arya', Mohan Lal and Ajay Gautama (2019), "Flipped Classroom Teaching: Model and its use for Information Literacy Instruction", IJRAR, vol. 5, issue 3, pp. 925-933.
6. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Bindal (2020), "An Analytical study of Innovativeness of Innovative teaching Method for stress free Education", IJRAR, vol. 7, issue 1, pp. 102-104.
7. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "Artificial Intelligence (AI) and Its role in Teacher education", GIS Science Journal, vol. 8, issue 10, pp. 134-139.
8. A. Seldon and O. Abidoye (2018), *The Fourth Education Revolution*, University of Buckingham Press, London, UK.
9. B. Du Boulay (2019), "Escape from the Skinner Box: the case for contemporary intelligent learning environments," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 2902–2919.
10. B. P. Woolf (2010), *A Roadmap for Education Technology (hal-00588291)*, University of Massachusetts Amherst, Amherst, MA, USA.
11. Gola, Rajkumari and 'Arya', Mohan Lal (2020), "Emerging Technologies and Teacher Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 11, issue 41, pp. 117-120.
12. I. Magnisalis, S. Demetriadis, and A. Karakostas (2011), "Adaptive and intelligent systems for collaborative learning support: a review of the field," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 4, no. 1, pp. 5–20.
13. J. Loeckx (2016), "Blurring boundaries in education: context and impact of MOOCs," *The International Review of Research in Open and Distributed Learning*, vol. 17, no. 3, pp. 92–121.
14. J. Petit, S. Roura, J. Carmona et al. (2018), "Jutge.org: characteristics and experiences," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 11, no. 3, pp. 321–333.
15. K. Ijaz, A. Bogdanovych, and T. Trescak (2017), "Virtual worlds vs books and videos in history education," *Interactive Learning Environments*, vol. 25, no. 7, pp. 904–929.
16. M. Cukurova, C. Kent, and R. Luckin (2019), "Artificial intelligence and multimodal data in the service of human decision-making: a case study in debate tutoring," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 3032–3046.
17. National Education Policy 2020, NCERT, New Delhi.
18. S. Kelly, A. M. Olney, P. Donnelly, M. Nystrand, and S. K. D'Mello (2018), "Automatically measuring question authenticity in real-world classrooms," *Educational Researcher*, vol. 47, no. 7, pp. 451–464.
19. S. Munawar, S. K. Toor, M. Aslam, and M. Hamid (2018), "Move to smart learning environment: exploratory research of challenges in computer laboratory and design intelligent virtual laboratory for eLearning technology," *Eurasia Journal of Mathematics, Science and Technology Education*, vol. 14, no. 5, pp. 1645–1662.
20. X. Ge, Y. Yin, and S. Feng (2018), "Application research of computer artificial intelligence in college student sports autonomous learning," *Kuram Ve Uygulamada Egitim Bilimleri*, vol. 18, no. 5, pp. 2143–2154.

Significance of Rural Development and Government Scheems

Kavita V. Juktimath
HOD. Dept. Of Commerce
BVVS. Akkamahadevi Women's Arts, Science and Commerce College Bagalkote Karnataka

Abstract-

In our country more than 70 percent of population resides in village area, so there is need of infrastructure, education, employment opportunities, social and economic development of villages, to improve quality life of villagers. Rural development involves the building of human life. It includes religious, political, cultural and economic conditions. Rural peoples need to be aware of all innovative and modern techniques to improve productivity. In our country, the rural communities are still in an underdeveloped .because of illiterate, poverty and unemployment. It is essential to formulate programs, financial facilities from the govt. is required to improve basic facilities in rural area. This paper include rural development concept, problems faced by rural individuals, programs introduced by the Government for rural development. The development of the country is depends on the development of rural communities.

Key words : Concept, Rural communities, Govt. programs, Rural individuals, Rural development.

I.Introduction-In India most of the population lives in the villages, and the depend on the agriculture and its other activities to lead there livelihood. Agriculture is the primary source of livelihood for about 58% of India's population, agriculture and allied sector share 20.19% to India's GDP. It is very important to give greater attention to them, The state and central government should come forward with new and useful schemes for the rural reconstruction and development. Most of the people are engaged in agricultural activities. But they don't know modern techniques of increasing their products. Many villages still lack of basic facilities like pure drinking water, electricity, schools, hospitals, bank etc. According to the World Bank; " Rural development is the process of rural modernization and monetization of the rural society leading to its transition from traditional isolation to integration with the national economy". Rural development is not only the process of growing the income of the rural household but also renovating the living standard of the people who lives in the rural areas which is measured by the several factors like food and nutrition level, health, education, housing and security and others.(1)

For rural development it is very important to solicit the participation of different groups of rural people to make the plans participatory the Government has planned several programs pertaining to rural development in India the ministry of rural development in India is the apex body for formulating policies, regulations and acts pertaining to the development of the rural sector. Agriculture, handicrafts, fisheries and diary are the primary contributors to the rural business and economy.

II.Need for the study-We have discussed the various rural development schemes implemented in India and analyze the current status of these schemes. The rural India facing the major problems of infrastructure, transport, house, employment opportunities in villages. In this regards, through this study we come to know the role of government schemes for development of villages.

III.Objectives of the study-To understand the role of rural development schemes in India To analyze the different Government schemes

IV.Scope of the study-The Government of India has been launched the various schemes for the development of rural India. Present study is focus on the schemes is to provide house, PMGSY to build roads and MGNREG act to provide employment to rural people.

Methodology-The study is descriptive in nature for the purpose of the study secondary data is used. The secondary data collected from the government official websites, research papers. In this part we discuss about several schemes of rural development that are introduced and implemented in India

1.Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA)-The Government of India launched a poverty alleviation program 'National Rural Employment Guarantee Act" (NREGA) . It was implemented in February 2006 in 200 districts in the country letter on it was extend to whole India, in 2009 It was renamed as "Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act". (2)The MGNREGA was initiated with the objective of "enhancing livelihood security in rural areas by providing at least 100 days of guaranteed wage employment in a financial year to every household whose adult members volunteer to do unskilled manual work", another objective of MGNREGA is to create durable assets employment is to be provided within 5 km of an applicant's residence and minimum wages are to be paid, if work is not provided within 15 days of applying, applicants are entitled to an unemployment allowances.(3) Gram Panchayat implemented the MGNREGA there is no interference of contractors labour intensive tasks like creating flood control creating infrastructure for water harvesting it empowering rural women's

Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act	Current Status
Total Number of Districts Covered	716
Total Number of Blocks Covered	7168
Total Number of Gram Panchayats Covered	269471
Total Number of Job card issued	15.79 crore
Total Number of Workers	30.09
Total Number of Active Job cards	9.96 crore
Total Number of Active Workers	19.68 crore

Table 1. Current Status of MANREGA as on 10.2.2021 *Source: https://nrega.nic.in*

The table indicates the current status of MGNREGA in India. It covered total 7168 block of 716 districts in India along with to 269471Gram panchayats in whole India. Under MGNREGA a large number of people in India got the employment opportunities. Under this plan 15.79 cross job cards were issued out of 9.96 corers job cards are active. Total number of registered workers under MGNREGA is 30.09 crores out of 15,33 corers are active workers.

2.Pradhan Mantri Awas Yojana Gramin – (PMAY-G) In January 1996 India Awas Yojana was introduced and it replaced as pradhan mantri awas yojana gramin on 1st April 2016. by central government of India the objective of this scheme is to provide the pacca houses with the basic facilities and a clean kitchen for those having in the kutcha houses'. The cost of constructing the houses will be shared by the center and the state. houses developed under this scheme will have basic amenities such as toilet, electricity, drinking water, LPG connection etc.

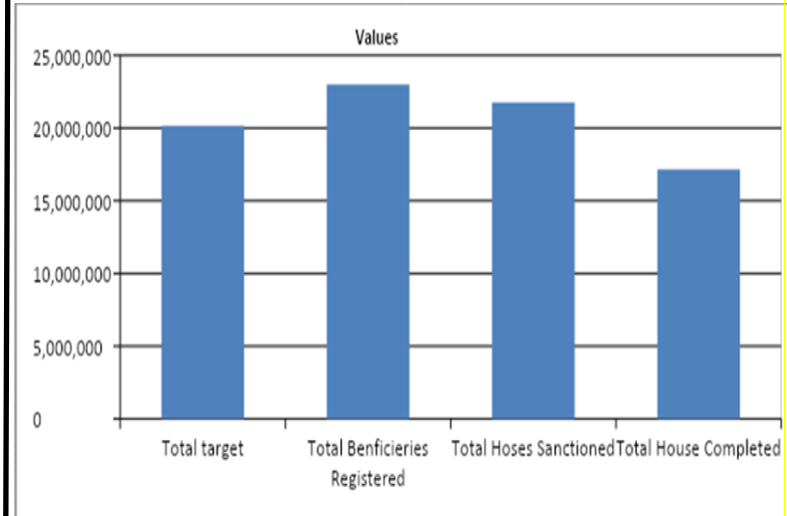

Progress of PMAY-G as on 9-2-2022
Source: https://rural.nic.in

The progress of PMAY - G when the scheme was introduced, Government set a target to build the 2.01 crore houses, but the number of registered beneficiaries under the scheme is 2.29 crore and 2.17 crore houses were sanction and 1.71 crore houses are completed from the sanctioned houses till the date.

3.Sansad Adarsh Gram Yojana – SAGY

Hon'ble prime minister shri Narendra Modi launched the Sansad Adarsh Gram Yojana on 11th October, 2014 on the birth anniversary of Lok Nayak Jai Prakash Narayan. The goal was to develop 3 Adarsh Gram by March 219, of which one was to be achieved by 2016. There after 5 such Adarsh Gram (one per year) will be selected and development by 2024.

Key Parameter Indicators	Value
Total number of Gram Panchayats identified under SAGY	2,579
Total number of Gram Panchayats that have prepared VDPs and Uploaded on the SAGY portal	2,028
Total number of activities planned under Village Development Plans	93056
Total number of activities reported as completed under Village Development Plans	56,839
Total number of activities reported as in-progress under Village Development Plans	28,415

Source: https://rural.nic.

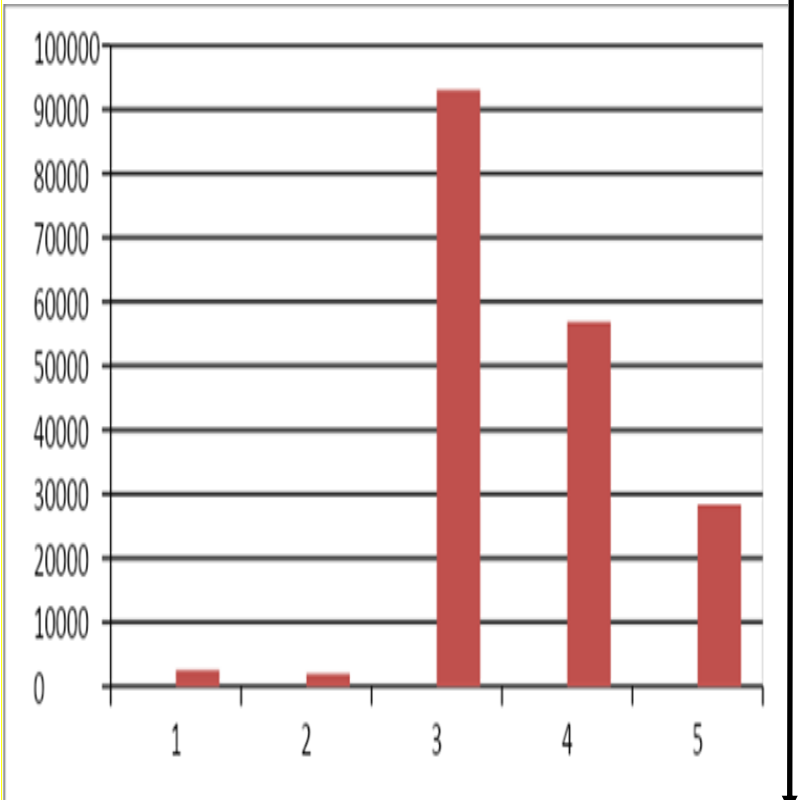

4.Sampoorna Gramin Rojgar Yojna (SGRY)-

It was launched in 2001 to provide employment to the poor it also aim at providing food to people in areas who live billing below the poverty line and improving bade nutritional labels and also provides social and economic assets to the people living in rural areas.

Conclusion.

Hear we discussed about rural development schemes implementing in India. From the above study, we conclude that government schemes for rural development uplift the living standard of rural peoples, by providing them employment opportunities. Many of the village peoples were got jobs from MANREGA , and houses from the scheme PMAY-G.

****

Reference :-

1. Deepak Kumar,Surender Narwal and Sunil Phougat, A Review of Rural Development schemes in India.Asian Jouranal of Sociologyical Research 2021,(pg 19).
2. Deepak Kumar,Surender Narwal and Sunil Phougat, A Review of Rural Development schemes in India.Asian Journal of Sociological Research 2021,(pg 20).
3. Dr. P. Srinivas a Rao, Rural Development Schemes in India – A study 2018 IJRAR January 2019, Vol 06 issue1.
4. www.nrega.nic.in.
5. www.rural.nic.in

संवैधानिक प्रावधान एव जनजातीय विकासः मध्यप्रदेश के जनजातियों के संदर्भ में

रामराज सिंह
शोधार्थी– एवं सहायक प्राध्यापक -राजनीति विज्ञान,
शासकीय अग्रणी स्नातकोत्तर महाविद्यालय वैढन, जिला-सिंगरौली म.प्र.

सारांशः मध्य प्रदेश भारत के मध्य में अवस्थित एक ऐसा राज्य है जिसकी अपनी विशिष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पहचान है जो उसकी विरासत है। मध्य प्रदेश, भारत का एक अभिन्न अंग होने के कारण यह पूर्णतः भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के अधीन शासित राज्य है। भारतीय संविधान में सभी राज्यों के लिए समान प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थागत संरचनाओं का प्रावधान किया है। इन्हीं संवैधानिक तहत सम्पूर्ण प्रदेश शासित होता है। भारत का संविधान भारतीय गणराज्य के निर्माण, उसके संरचना, और संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण डोक्यूमेंट है, जिसमें नागरिकों के मौलिक अधिकार और कर्तव्यों को सुनिश्चित किया गया है। भारतीय संविधान सामाजिक समरूपता एवं सामाजिक न्याय एवं विकास की समान स्थिति को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रावधानों की व्यवस्था करता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में जनजातियों का एक विशिष्ट स्थान है जिसका प्रतिबिंब मध्यप्रदेश की सामाजिक संरचना में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन जनजातियों की अपनी आधिकारिक भाषा और संस्कृति है। ये जनजातियाँ वृहत भारतीय समाज से पृथक सामाजिक एवं भौगोलिक अलगाव की स्थिति में देखी जाती हैं। ऐसे में इन समाजों के लोगों की सुरक्षा, संरक्षण एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त किया जाना आवश्यक है ताकि उनका समग्र विकास हो सके।

मूल शब्दः राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, गणराज्य, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्य, आधिकारिक भाषा, समग्र विकास।

प्रस्तावनाः भारतीय संविधान को सामाजिक न्याय के संस्थापक, प्रवर्तक एवं पोषक की भूमिका में देखा जाता है। सामाजिक न्याय एवं समानता किसी भी समाज की मूलभूत संकल्पना होती है। संविधान के अनेक प्रावधानों के माध्यम से इन सामाजिक न्याय की संकल्पनाओं का समर्थन किया जाता है तथा इनकी प्राप्ति संविधान का मूल उद्देश्य होता है। इनके माध्यम से सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। संविधान में निहित ये प्रावधान, जनजातीय विकास के लिए पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभाते हैं। संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत वे संवैधानिक दस्तावेज शामिल होते हैं, जिनमें जनजातियों के अधिकारों का संरक्षण और सुरक्षा के लिए प्रावधान निहित होता है। इन प्रावधानों के माध्यम से समानता, न्याय और जनजातियों के सशक्तिकरण का समर्थन किया जाता है। वहीं जनजातीय विकास के अंतर्गत जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक विकास को समर्थन प्रदान करने के लिए विभिन्न योजनाओं, प्रोजेक्ट्स, और प्रोग्राम्स का संयोजन होता है। इन दोनों क्षेत्रों के माध्यम से, सरकारें जनजातियों के विकास को समर्थन प्रदान करती हैं, जिससे उनका समुचित विकास होता है।

जनजातीयों की सुरक्षा एवं विकास के लिए भारतीय संविधान में पृथक-पृथक संवैधानिक व्यवस्था प्रदान की गई है। स्वतंत्र भारत के नागरिकों के रूप में जनजातीय लोगों को अन्य नागरिकों के समान सिविल, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किए गए। नागरिक और राजनीतिक अधिकार भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकरों के दायरे में आते हैं, जबकि सामाजिक अधिकारों की व्यवस्था भारतीय संविधान के निर्देशक सिद्धांतों में की गई है। जनजातियों को विशिष्ट समुदाय के सदस्य के नाते कुछ विशेष अधिकार भी प्रदान किए गए हैं। ये अधिकार संविधान के द्वारा सभी राज्यों के जनजातियों को समान रूप से प्रदान किए गए हैं जो मध्यप्रदेश के जनजातियों को भी स्वतः प्राप्त हैं, जिन अधिकारों में-

अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक अनुरक्षण के प्रावधान

शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक अनुरक्षण

अनुच्छेद 15(4) अन्य पिछड़े वर्गों (जिसमें अनुसूचित जनजातियां शामिल हैं) के विकास के लिए विशेष प्रावधान-

अनुच्छेद 29 अल्पसंख्यकों (जिसमें अनुसूचित जनजातियां शामिल हैं) के हितों का संरक्षण

अनुच्छेद 46 राज्य द्वारा, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित

जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि के प्रयास, सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार

के शोषण से उसकी संरक्षा का प्रावधान

अनुच्छेद 350 पृथक भाषा, लिपि या संस्कृति की संरक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 350 मातृभाषा में शिक्षण।

सामाजिक अनुरक्षण

अनुच्छेद 23 मानव दुर्व्यापार और भिक्षा एवं अन्य समान बलपूर्वक श्रम का प्रतिषेध

अनुच्छेद 24 बाल श्रम निषेध।

आर्थिक अनुरक्षण

अनुच्छेद 275 संविधान की पांचवी एवं छठी अनुसूचियों के अधीन आवृत विशेषीकृत राज्यों (एसटी एवं एसए) को अनुदान सहायता।

राजनीतिक अनुरक्षण

अनुच्छेद 164(1) मध्य प्रदेश में जनजातीय कार्य मंत्री के लिए प्रावधान

अनुच्छेद 330 लोक सभा में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण अनुच्छेद 337 राज्य विधान मण्डलों में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण अनुच्छेद 334 आरक्षण के लिए 10 वर्षों की अवधि (अवधि के विस्तार के लिए कई बार संशोधित) अनुच्छेद 243 पंचायतों में सीटों का आरक्षण

सेवा अनुरक्षण (अनुच्छेद 16(4), 16(4क), 164(ख), अनुच्छेद 335, और अनुच्छेद 320(40)

उपरोक्त अनुरक्षण के प्रावधान मध्यप्रदेश के समस्त जनजातियों को एक समान संरक्षा, न्याय तथा जनजातीय सशक्तिकरण के लिए समर्थन प्रदान करते हैं।

2. जनजातीय विकासः

मध्यप्रदेश सरकार जनजातियों के लिए विकास योजनाएं बनाती हैं, जिनका मकसद उनके जीवन में सुधार करना होता है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, और सामाजिक विकास के क्षेत्र में कई प्रकार की योजनाएं शामिल हो सकती हैं। संविधान एवं जनजातीय विकास मध्य प्रदेश के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण चरण हैं। भारतीय संविधान, भारतीय गणराज्य का मूल नियमपत्र है, जिसके माध्यम से प्रदेश के नागरिकों के मौलिक अधिकार और कर्तव्यों को निर्धारित किया गया है।

मध्य प्रदेश, भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य है, जिसे देश का हृदय प्रदेश भी कहा जाता है। इस राज्य में अनेक जनजातियाँ और आदिवासी समुदाय हैं, जिनकी आधिकारिक भाषा और सांस्कृतिक धर्मों के प्रति सजीव चित्रण भी दिखाई देता है। संविधान के माध्यम से, सरकार जनजातियों के अधिकारों और सुरक्षा के लिए कई उपायों को प्राथमिकता देती है, जैसे कि पंचायती राज व्यवस्था, जनजातियों के सांस्कृतिक और भौतिक विकास के लिए विशेष योजनाएं और अन्य समानुपातिक उपाय। मध्य प्रदेश में जनजातियों के विकास के लिए भी विभिन्न योजनाएं और कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जिनमें उनके शिक्षा, स्वास्थ्य, और आर्थिक सुधार को प्राथमिकता दी जा रही है। इसके अलावा, समाज के अनुसार विकास की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के भी प्रयास हो रहे हैं। संविधान और सरकारी योजनाओं के माध्यम से, मध्य प्रदेश की जनजातियों को उनके मौलिक अधिकारों का उपयोग करने और समाज में उनके सामाजिक और आर्थिक स्थान को सुधारने का मौका मिला है। यह उनके समृद्धि और सामाजिक समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है। इन प्रावधानों से संविधान का उद्देश्य जनजातियों के हितों को सुरक्षित, संरक्षित और प्रोत्साहित करना है। जनजातियों से संबंधित सभी प्रावधानों में उन्हें प्रदत्त संरक्षणात्मक वैशिष्ट्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकारों में से एक है। सरकार ने विशेष उपाय विकसित किए हैं ताकि संविधान में जनजातियों को प्रदान किए गए अधिकारों को लागू किया जा सके। इन सभी प्रावधानों के बावजूद, नतीजे संतोषजनक नहीं रहे हैं। अनुसूचित जातियों की तुलना में अनुसूचित जनजातियों के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। इसे संविधान के अनेक प्रावधानों के उदाहरण से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर संविधान के प्रावधान अंतर्गत अनु. 335 में कहा गया है कि "सेवाओं और पदों पर नियुक्तियों के संदर्भ में अनसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों पर विचार प्रशासन में सक्षमता बनाए रखने के अनुरूप किया जाना चाहिए।" जनजातीय लोगों को जो अधिकार दिए गए हैं, वे उनका लाभ केवल जनजातीय समुदाय के सदस्यों के रूप में उठा सकते हैं। यह उनका व्यक्तिगत अधिकार है कि वे अन्य लोगों के समान अपनी पहुँच कायम कर सकें। किन्तु इन अधिकारों को प्रदान करने में लापरवाही या उदासीनता देखी जाती है। इन मामलों को अदालत में चुनौती देने में राज्य के समक्ष एक कठिनाई महसूस की जाती है। भेदभाव के केवल विशिष्ट मामलों को ही अदालत में ले जाया जा सकता है, जिनमें बचाव के अनेक प्रावधानों का सहारा लेकर आसानी से बचा जा सकता है।

संरक्षणात्मक वैशिष्ट्य के प्रावधान अपने आप में आज पर्याप्त नहीं लग रहे हैं। इनको और अधिक कारगर बनाने के लिए, प्रावधानों को मौलिक समानता अर्थात् योग्यता, संसाधन और वास्तविक अवसर से परिपूर्ण किया जाना चाहिए ताकि औपचारिक समानता तथा जनजातियों से संबंधित मामले में संरक्षणात्मक प्रावधानों को कारगर बनाया जा सके। जनजातियों के लिए न केवल कानूनी या संवैधानिक प्रावधानों के जरिए आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के प्रावधान किए जाने चाहिए बल्कि उन प्रावधानों के लिए एक सहायता तंत्र भी विकसित की जानी चाहिए जिससे जनजातियों को प्रावधान से संबंधित आवश्यक जानकारी एवं सहायता उपलब्ध हो सके। जहाँ भी कुछ ऐसे प्रयास किए गए हैं, नतीजे जरूर सामने आए हैं। इस दिशा में उठाए गए कदम संविधान के प्रावधानों की भावना से भिन्न रहे हैं। ये उपाय जनजातियों की विशिष्ट भाषा और संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन की बजाय प्रदेश के प्रमुख सामाजिक समुदाय की भाषा और संस्कृति में सम्मिलन की दिशा में अधिक प्रतीत होते हैं। उदाहरण के तौर पर जनजातियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था संबद्ध राज्य के प्रमुख समुदाय की भाषा में की जाती है। इसका यह नतीजा है कि जनजातियाँ स्वयं की भाषा और संस्कृति के ज्ञान से दूर होती जा रही हैं। वास्तव में, भाषा और संस्कृति का संवर्द्धन एवं विकास स्वयं जनजातियों पर छोड़ दिया गया है। जनजातीय समुदाय, संगठनात्मक और वित्तीय संसाधनों के अभाव के कारण इस दिशा में कारगर उपाय कर पाने में सक्षम नहीं है।

यह विडंबना है कि जनजातीय समुदायों के हित एवं कल्याण के लिए सार्थक संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों के बावजूद जनजातियों के अलगाव का मूल कारण स्वयं उनसे संबद्ध कानून ही है। जनजातियों में पढ़ने-लिखने की कोई विकसित एवं व्यवस्थित परंपरा नहीं है और यही कारण है कि उनमें ऐसे कानूनों से निबटने का सामर्थ्य नहीं है। उनके लिए अदालत की भाषा और पद्धति अपरिचित है। इसी सामर्थ्य के अभाव के कारण गैर-जनजातीय लोग ऐसे कानूनों का लाभ उठाते हैं और विभिन्न प्रकार के हथकंडों के जरिये जनजातीय भूमि का इस्तेमाल करते हैं। स्थानीय प्रशासन, जिसका प्रबंधन आमतौर पर गैर-जनजातीय लोगों के हाथ में होता है, जो सामर्थ्यवान गैर-जनजातीय लोगों के मिलीभगत से काम करता है जिससे जनजातीय लोगों से भूमि का हस्तांतरण गैर-जनजातीय लोगों के पक्ष में आसानी से हो जाता है।

उपरोक्त प्रक्रिया में उन कानूनों का भी योगदान है जो जनजातियों की संरक्षा और सामान्य नागरिकों और मानवों के लिए बनाए गए हैं। इनमें सामान्य कानूनों को नागरिकता और मानवाधिकारों के साथ जोड़कर देखा जाता है। वास्तव में, जनजातियों के लिए अधिकारों का अर्थ नागरिक अधिकारों और मानवाधिकारों के संदर्भ में अधिक समझा जाता है। साथ ही, इस समूह के, अलग-थलग पड़े लोगों के समूह के लिए बनाए गए कानून निरंतर सामान्य कानूनों के अधीन होते चले जा रहे हैं। इसकी परिणति यह है कि जनजातियों के संरक्षण के लिए बनाए गए कानूनों की सार्वजनिक हित के लिए बनाए गए कानूनों जैसे भूमि अधिग्रहण अधिनियम, संरक्षण अधिनियम, वन अधिनियम, वन्य जीव अभ्यारण्य अधिनियम आदि के द्वारा राष्ट्र और सार्वजनिक हित में जनजातीय अधिकारों की बली चढ़ जाती है। यहाँ तक की न्यायपालिका और उसका संचालन करने वाले लोग आम तौर पर जनजातीय समुदायों से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों और कानूनी अधिकारों के प्रति असंवेदनशीलता प्रदर्शित करते हैं।

निष्कर्ष:- संवैधानिक प्रावधान और जनजातीय विकास दो अलग-अलग क्षेत्रों में होते हैं, लेकिन वे एक साथ काम करके जनजातियों के समृद्धि और समाज में समावेश को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। संवैधानिक प्रावधान जनजातियों के अधिकारों को संरक्षित करने और उनके लिए सुरक्षा प्रदान करने के उपायों को स्थापित करते हैं, जबकि जनजातीय विकास उनके सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहित करने के उपायों को संचालित करता है। इन दोनों क्षेत्रों के सही और सटीक अमल से, जनजातियां समृद्धि की ओर बढ़ सकती हैं और समाज में समावेश प्राप्त कर सकती हैं।

इस तरह, संवैधानिक प्रावधान और जनजातीय विकास एक साथ काम करके समृद्धि और समाज में सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने में मदद करते हैं। संवैधानिक प्रावधान और जनजातीय विकास दो अलग-अलग क्षेत्र हैं लेकिन संबंधित कार्यक्षेत्रों के अंतर्गत आने वाले दोनों महत्वपूर्ण विषयों को एक साथ समन्वित रूप से कार्य करने की आवश्यकता है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1.एन.सी.एस.टी के वेबसाइट www.ncst.nic.in
2.म.प्र.जनजातीय कार्य विभाग की वेबसाइट www.tribal.mp.gov.in
3. https://hi.vikaspedia.in/social-welfare

जल-संकट निवारण के संदर्भ में झारखंड राज्य- गंभीर पर्यावरणीय मुद्दा

सौरभ शुभम्
(शोधकर्ता, हैदराबाद विश्वविद्यालय)
टी.एन. मिश्रा,पूर्व निदेशक (खान एवं भूतत्व विभाग,बिहार सरकार)

प्रस्तावना-

झारखण्ड एक नव निर्मित राज्य है। इस राज्य में औसत वार्षिक वर्षा 1350 मिमी है। इस प्रकार उसे पर्याप्त वर्षा जल मिलता है जिसे संरक्षित किया जाना चाहिए था, चाहे वह सतह पर हो या कृत्रिम तरीकों से भूमिगत हो। अधिकांश चट्टानी और पहाड़ी इलाकों वाला राज्य भूजल पुनर्भरण के लिए उचित अवसर प्रदान करता है। बढ़ती आबादी द्वारा भूजल के अत्यधिक दोहन और वर्षा जल के संरक्षण में लापरवाही के कारण झारखंड में गंभीर जल संकट उत्पन्न हो गया है। अधिकतर चट्टानी भूभाग और उच्च उच्चावच होने के कारण वर्षा जल का लगभग 80% भाग अपवाह के माध्यम से बह जाता है और बर्बाद हो जाता है। भूजल के अनियोजित और अस्थिर दोहन के कारण भूजल स्तर में भारी गिरावट आई है, जिससे ट्यूब-वेल और खोदे गए कुओं की जल-उपज कम हो गई है। इसके अलावा भूजल के अत्यधिक दोहन के परिणामस्वरूप विभिन्न जलभृतों में बचे हुए भूजल में फ्लोराइड, आर्सेनिक, आयरन आदि जैसी अशुद्धियाँ जमा हो गई हैं, जिससे उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो गया है। भूमिगत जलभरों को बैक्टीरिया मुक्त शीतल वर्षा जल से भरने की दृष्टि से जल संसाधनों का प्रभावी और टिकाऊ प्रबंधन अब राज्य के लिए एक आवश्यकता है। जैसे छतों से बहते पानी को पकड़ना, आस-पास के जलग्रहण क्षेत्रों से बहते पानी को पकड़ना, वाटरशेड प्रबंधन के माध्यम से वर्षा जल का संरक्षण करना, खंडित और अपक्षयित क्षेत्रों जैसे संभावित क्षेत्रों की पहचान करना और उन्हें बढ़ाने के लिए वर्षा जल के साथ रिचार्ज करना।

भारत में लगभग 70% पानी का उपयोग खाद्यान्न उत्पादन के लिए सिंचाई के लिए किया जाता है और इस प्रकार लोगों की खाद्यान्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा, पानी की कमी पर्यावरण को गंभीर रूप से प्रभावित करती है और पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ देती है। इस राज्य में शहरीकरण, औद्योगीकरण और खनन ने भी जल-संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। झारखंड के जल संसाधनों के विकास और प्रबंधन के लिए एक अनुकूल जल नीति का अभी भी अभाव है I

झारखण्ड में जल संरक्षण का ऐतिहासिक संदर्भ - आदिवासी इतिहास विद्वान अशोका कुमार सेन के अनुसार-सामूहिक जनजातीय पहचान परिदृश्य, विशेषकर जल निकायों से निकटता से जुड़ी हुई है। आदिवासी अपने दैनिक जीवन को प्राकृतिक और मानव निर्मित जल स्रोतों से जोड़ते हैं।नदियाँ, भूमि, वनस्पति और जीव-जंतुओं की तरह पवित्र दर्जा रखती हैं।आदिवासियों का मानना है कि सिंगबोंगा ने दुनिया और उसमें रहने वाले प्राणियों की रचना की है। आदिवासी गाँव में जंगल, पहाड़ी क्षेत्र, भूमि और जल संसाधन शामिल होते हैं। मागे, बा, हीरो और दा मुराई जैसे त्योहारों के लिए पर्याप्त वर्षा और फसल उत्पादन के लिए देवताओं और आत्माओं के आशीर्वाद की आवश्यकता होती है। आदिवासियों का आदर्श निवास स्थान साफ नदियाँ और झरने, वायु प्रवाह और पर्याप्त मात्रा में वर्षा है। बाद के समय में जब आदिवासी गैर जातीय वर्तमान समूहों के संपर्क में आए तो उन्हें बांध/आहार कहा जाने लगाI सिंचाई का लोकप्रिय साधन बन गया। आदिवासियों ने अपने टैंक बुलाये बोंगा पोखरा के रूप में, जो दर्शाता है कि वे भगवान से संबंधित थे।गाँव के तालाबों को निर्माण के आधार पर भी वर्गीकृत किया गया था- किसानों द्वारा, सामान्य संग्रह द्वारा, सरकार और गाँव के संयुक्त स्वामित्व द्वारा।और अंततः कई गांवों द्वारा साझा किया गया। कुओं के अलावा धुरी और आहर जैसी कई अन्य संरचनाओं का निर्माण किया गया था।

आदिवासी जल संसाधनों का उपयोग सिंचाई, पीने और मछली पकड़ने के लिए करते हैं। कारो और कोयल जैसी नदियों को दैवीय उत्पत्ति का कहा जाता था । आदिवासियों ने पानी को मौलिक महत्व दिया।

जल संरक्षण

मुंडा मान्यता- मुंडा मान्यता के अनुसार पूरी पृथ्वी जल से ढकी हुई थी। परमात्मा ने प्राणियों को जल में ही बनाया है।

संथाल- सर्वोच्च प्राणी ठाकुर जीब ने प्राणियों को पानी में बनाया था। खुरुख मान्यता में पानी के संबंध में मनुष्य की मृत्यु और अमरता का उल्लेख है और समुद्र का उल्लेख है। हो जनजाति का मानना है कि पानी मानव और जीवन के अन्य सभी रूपों के निर्माण में बहुत प्रयास से उपयोग किया जाने वाला मुख्य घटक था ,भगवान सिंगबोंगा द्वारा।.झारखंडी लोगों ने हाल के दिनों में जल संरक्षण की प्रथा को पुनर्जीवित किया है। जल संरक्षण के लिए डोभा भी बहुत उपयोगी है, जैसा कि हाल के दिनों में साबित हुआ है।राजेंद्र सिंह और साइमन ओरांव जैसे कई लोगों ने राज्य में जल संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

राजेंद्र सिंह स्वदेशी ज्ञान पर दोबारा गौर करने की सलाह देते हैं और साइमन ओरांव वनीकरण को बढ़ावा देते हैं।पुनर्भरित वर्षा जल का उपयोग वर्ष के अधिकांश हिस्सों में किया जा सकता है और इससे झारखंड में सिंचाई के बुनियादी ढांचे को बढ़ावा मिल सकता है

झारखंड की चट्टानों का निर्माण और उनका जल-भूवैज्ञानिक व्यवहार- राज्य में तीन प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। पहला, ग्रेनाइट, बेसाल्ट और डोलराइट जैसी सघन संरचना जिसमें दरारें होती हैं जिनमें केवल द्वितीयक सरंध्रता होती है। दूसरे, गोंडवाना बलुआ पत्थर जैसी अर्ध-संहत संरचना जिसमें प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार की सरंध्रता होती है। तीसरे प्रकार की संरचनाएँ प्राथमिक सरंध्रता वाली जलोढ़ संरचनाएँ हैं जो पानी की अधिकतम मात्रा उत्पन्न करती हैं। भूजल प्राप्त करने की गहराई सीमा 185 मीटर तक है। केंद्रीय भूजल बोर्ड (सीजीडब्ल्यूबी) ने राज्य के विभिन्न हिस्सों से बोर होल डेटा के आधार पर पाया है कि पानी की उपज की सीमा कठोर चट्टान वाले क्षेत्रों में 3.6 घन मीटर प्रति घंटे से लेकर गोंडवाना में 50 घन मीटर तक है। दक्षिण कोयल, कारो, दामोदर, स्वर्णरेखा और सोन जैसी बड़ी नदियों की घाटियों में प्राथमिक सरंध्रता के साथ जलोढ़ संरचना से घंटे से 80 घन मीटर तक पानी प्राप्त होता है। हालाँकि, ऐसे जलोढ़ क्षेत्र राज्य के कुल क्षेत्रफल का केवल 3% हैं।

झारखंड के जल संसाधनों पर शहरीकरण, औद्योगीकरण और खनन का प्रभाव- पिछले दशकों में राज्य में शहरीकरण बहुत तेजी से हुआ है। विभिन्न कस्बों में जनसंख्या वृद्धि के दौरान, कई सड़कों और इमारतों का निर्माण हुआ है।

इससे भूजल के प्राकृतिक पुनर्भरण के लिए आवश्यक खुले क्षेत्र सिकुड़ गए। दूसरे, हजारों पेड़ काटे गए जो भूजल के प्राकृतिक पुनर्भरण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। तीसरा, कई नदी तटों और तालाबों पर अवैध रूप से अतिक्रमण किया गया है, इसके अलावा गंदे पानी को जलस्रोतों में बहाया जा रहा है और उन्हें बुरी तरह प्रदूषित किया जा रहा है। ऐसे गंदे पानी को पहले उपचारित किया जाना चाहिए था और फिर जलस्रोतों में जाने दिया जाना चाहिए था।

कुल भारतीय खनिजों का लगभग 40% झारखंड से उत्पादित होता है। दामोदर नदी के तट पर लगभग सभी उपरोक्त संयंत्र स्थित हैं और वे सभी अपने औद्योगिक अपशिष्टों को नदी में बहाते हैं। इस नदी के पानी को प्रदूषित करने का परिणाम इस हद तक है कि नदी का पानी नहाने लायक भी नहीं बचा है। उपरोक्त प्रदूषण को खत्म करने के लिए अब तक की गई कार्रवाई अपर्याप्त है। जहां तक अन्य उद्योगों का सवाल है, मुरी एल्युमीनियम प्लांट द्वारा छोड़ी गई लाल मिट्टी का उचित निपटान अभी तक नहीं किया गया है, जो स्थानीय लोगों के लिए गंभीर समस्या पैदा कर रहा है। पलामू जिले के गढ़वा रोड स्थित कास्टिक सोडा प्लांट दक्षिण कोयल नदी में क्लोरीन छोड़ रहा है, जिससे नदी का पानी प्रदूषित हो रहा है। हेवी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन (एचईसी) रांची के अपशिष्ट पदार्थ सुवर्णरेखा नदी के पानी को प्रदूषित कर रहे हैं। उपरोक्त के अलावा राज्य के विभिन्न हिस्सों में स्थित एकीकृत इस्पात संयंत्र, सीमेंट संयंत्र, उर्वरक संयंत्र खेती योग्य भूमि के साथ-साथ लगभग जल निकायों को भी प्रदूषित करते हैं। ऐसे प्रदूषकों को खत्म करने के लिए उपयुक्त और टिकाऊ कार्रवाई अभी भी नहीं की गई है।

विभिन्न प्रकार के खनिजों के लिए खनन गतिविधियाँ निकटवर्ती क्षेत्रों के जल संसाधनों को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। आसपास के क्षेत्रों में फेंके गए खदानों के अपशिष्टों में मौजूद अशुद्धियाँ बारिश के पानी में घुल जाती हैं और आसपास के जल निकायों में बह जाती हैं, जिससे वे काफी प्रदूषित हो जाते हैं। कोयला खनन के दौरान गहरी खदानों से बड़े पैमाने पर पानी निकालने का काम किया जाता है। आस-पास के क्षेत्र में भूजल स्तर नीचे चला जाता है जिससे पानी का निकास कम हो जाता है या ट्यूबवेलों और खोदे गए कुओं से पानी निकलना बंद हो जाता है। बड़ी खुली कोयला खदानों में जमा पानी गहरे जलभृतों के पानी को भी प्रदूषित करता है। पेड़-पौधों की जड़ें कठोर चट्टानों में भी प्रवेश करती हैं और वर्षा जल के रिसने और भूजल के प्राकृतिक पुनर्भरण के लिए इसे छिद्रपूर्ण बनाती हैं। इसलिए, खनन के बाद प्रभावित क्षेत्रों को पुनः प्राप्त किया जाना चाहिए और खेती योग्य भूमि में परिवर्तित किया जाना चाहिए। राज्य की कई खदानों में ऐसा नहीं किया जा रहा हैI

राज्य-राजधानी रांची में जल-संकट की स्थिति:- रांची नव निर्मित झारखंड राज्य की राज्य-राजधानी है। राज्य-राजधानी का दर्जा दिए जाने के बाद इसकी जनसंख्या कई गुना बढ़ गई है। राज्य की राजधानी का दर्जा प्राप्त करने के बाद, कई सड़कों और इमारतों का निर्माण किया गया, जिसके दौरान पिछले दो दशकों में भूजल के प्राकृतिक रिचार्जिंग को छोड़कर बड़ी संख्या में खुले क्षेत्रों को सीमेंट और कंक्रीट से ढक दिया गया। सड़कों के निर्माण और चौड़ीकरण के दौरान हजारों पेड़ काट दिए गए, जो वर्षा जल को भूमिगत करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार **रांची** की जनसंख्या केवल 0.6 मिलियन (5,99,306) थी और रूक्का, हटिया और कांके बांधों के सतही जल भंडार लोगों की पानी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त थे। वर्तमान में इसकी आबादी 15 लाख तक बढ़ गई है। दुर्भाग्य से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोई अतिरिक्त जल भंडार निर्माण नहीं किया गया है। ऐसे में सारा भार भूजल पर है जिसका गहरे ट्यूबवेलों के जरिए बेरहमी से दोहन किया जा रहा है। यहां तक कि रांची नगर निगम (आरएमसी) ने भी लोगों की पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए कई एचवाईडीटी (हाई यील्डिंग डीप ट्यूबवेल) स्थापित किए हैं। दूसरी ओर, खाली हो रहे भूजल जलभृतों को रिचार्ज करने के लिए कोई उपयुक्त टिकाऊ कार्रवाई नहीं की गई है, जिससे भूजल स्तर में गिरावट आई है और परिणामस्वरूप कई घरेलू ट्यूबवेल और खोदे गए कुएं सूख गए हैं।

पहले से मौजूद रूक्का, हटिया और कांके बांधों की जल भंडारण क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से इनकी गाद निकालने की कार्रवाई काफी पहले प्रस्तावित की गयी थी, लेकिन यह आज तक नहीं हो सका. विशेष रूप से गर्मी के मौसम में इन जलाशयों से पानी की आपूर्ति में लगभग हर साल राशनिंग की आवश्यकता होती है। डी-सिल्टिंग के प्रस्ताव पर अमल होने और इन बांधों की भंडारण क्षमता बढ़ने पर राशनिंग की स्थिति खत्म हो जाएगी।

भूजल पर भार कम करने के लिए अतिरिक्त सतही जल जलाशयों का निर्माण आवश्यक है। प्राथमिकता के आधार पर तीन बांधों के निर्माण का प्रस्ताव रखा गया। उनका स्थान बोरिया में जुमार नदी और पोटपोटो नदी के संगम के नीचे है, दूसरा परसाटोली में हरमू नदी और सुवर्णरेखा के संगम के नीचे की ओर है और तीसरा मंदार के पास दक्षिण कोयल पर है जहां लोगों का विस्थापन नाममात्र होगा। ऐसे सतही जलाशय न केवल लोगों की पानी की जरूरत को सीधे पूरा करेंगे बल्कि भूजल को रिचार्ज भी करेंगे और आसपास के क्षेत्रों में भूजल स्तर को भी बढ़ाएंगे।

झारखंड के ग्रामीण इलाकों में जल संकट- राज्य के 70% से अधिक लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और अपनी आजीविका के रूप में कृषि पर निर्भर हैं। मानसून के अनिश्चित और असामयिक आगमन के कारण और विशेष रूप से सूखे की स्थिति में, उन्हें अपनी फसल-सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी नहीं मिलता है। खाद्य-उत्पादन के लिए जल एक अत्यंत आवश्यक आवश्यकता है। पानी की कमी के कारण खाद्यान्न का उत्पादन न होना लोगों को अपनी आजीविका के लिए भारत के अन्य राज्यों में पलायन करने के लिए मजबूर करता है।

पहाड़ी इलाके होने के कारण लगभग 80% वर्षा जल नालों और नालों के माध्यम से बह जाता है और बर्बाद हो जाता है। इससे कुएं, तालाब और छोटी नदियां सूखने लगती हैं और पीने के पानी तक का संकट शुरू हो जाता है। लोगों को घरेलू उपयोग के लिए दूर-दराज के स्थानों से या सूखी नदी के तल में गहरे गड्ढे खोदकर पानी लाना पड़ता है। यदि जल संसाधनों को उनके उद्गम क्षेत्रों से ही चेक बांधों की एक श्रृंखला का निर्माण करके संरक्षित किया जाता है, तो ऐसे कार्यों से भूजल को रिचार्ज करने और निचले क्षेत्रों में स्थित सतही जलाशयों से सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध कराने में काफी मदद मिलेगी। विकास भारती द्वारा बिसुनपुर, जिला गुमला जैसे पहाड़ी क्षेत्रों से पानी का मार्ग मोड़ना; नामकुम, जिला राँची द्वारा आर.के. कपार्ट द्वारा गुमला जिले के मिशन और पालकोट क्षेत्र को खेती योग्य भूमि प्रदान करना इसके अच्छे उदाहरण हैं। इस सुविधा का लाभ उठाने के बाद किसानों को एक वर्ष में एक के बजाय तीन फसलें मिलने लगी हैं और वे खुश हैं। अनुकूल भू-आकृतिक स्थलाकृति के कारण झारखंड में ऐसी धारा के पानी को कृषि क्षेत्रों की ओर मोड़ने और पर्याप्त मात्रा में सिंचाई जल प्राप्त करने की काफी गुंजाइश है। ढलान वाली भूमि पर समोच्च खाइयों के निर्माण और डाउन-स्ट्रीम क्षेत्रों में पहले से मौजूद या प्रस्तावित जलाशयों में वर्षा जल के संग्रहण से उनकी खेती योग्य भूमि में पानी के

लिए तरस रहे किसानों को राहत मिलेगी। ऐसे जल निकाय न केवल ढलान वाले हिस्से में सीधे उपयोग के लिए उपयोगी होंगे बल्कि भूजल को भी रिचार्ज करेंगे। नेपाल में की जाने वाली सीढ़ीदार खेती का चलन किसानों के लिए एक और उपयोगी कदम होगा। उपयुक्त स्थलों पर तालाबों की खुदाई के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित मध्यम, छोटे और सूक्ष्म चेक-डैम के रूप में बड़ी संख्या में जल निकायों का निर्माण किया जाना चाहिए। ये जल निकाय न केवल सिंचाई और घरेलू उपयोग के लिए सतही जल का स्रोत होंगे बल्कि भूजल भंडारण को भी रिचार्ज करते रहेंगे। मैग्सेसे पुरस्कार विजेता राजेंद्र सिंह के दिशा-निर्देशों के तहत राजस्थान में इसी तरह के काम ने सूखी अरवारी नदी को पुनर्जीवित किया है जो इसके किनारे स्थित 75 गांवों की जीवन रेखा बन गई है।

जिन गांवों में कुएं सूख जाते हैं और गर्मी के मौसम में लोगों को गंभीर जल संकट का सामना करना पड़ता है, वहां छत पर वर्षा जल संचयन ही एक सुनिश्चित समाधान है। ग्रामीण इलाकों में घरों की छतें ज्यादातर ढलानदार होती हैं, जो या तो फूस की होती हैं या फिर मिट्टी की टाइलों से ढकी होती हैं। ऐसी छतों से वर्षा जल को गटर प्रणाली का उपयोग करके एकत्र किया जा सकता है और इसे पुनर्भरण-गड्ढों में डाला जा सकता है। आस-पास के कई घरों की छत के पानी को भी एकत्र किया जा सकता है और रेत फिल्टर और क्लोरीनीकरण के माध्यम से आवश्यक निस्पंदन के बाद सीधे उपभोग करने के लिए बड़े नाबदान में संग्रहीत किया जा सकता है। नाबदानों में जमा अतिरिक्त पानी को आसपास के कुओं में भी डाला जा सकता है जो गर्मी शुरू होने से पहले ही सूख जाते हैं। गर्मी में हैंडपंप सूख जाते हैं। यदि आसपास के क्षेत्र से सतही वर्षा जल को हैंडपंपों के पास स्थित सतही जल संचयन संरचना में ले जाया जाए, तो वे कभी नहीं सूखेंगे।

जल संकट के निवारण के लिए झारखंड के पथरीले इलाके में बहने वाली अल्पकालिक नदियों का संरक्षण भी महत्वपूर्ण है। भूजल के अत्यधिक दोहन, प्रदूषण और लोगों द्वारा अतिक्रमण के कारण ये धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं। इसका ज्वलंत उदाहरण हरमू नदी है जो कभी रांची की जीवन रेखा हुआ करती थी। शहरी या ग्रामीण क्षेत्रों से होकर बहने वाली ऐसी नदियों को बहुउद्देश्यीय उपयोग के लिए संरक्षित किया जाना चाहिए। नदियाँ सतही जल का मुख्य स्रोत हैं। यदि उन्हें बारहमासी बना दिया जाए तो उनके दोनों किनारों से लगे क्षेत्र रिचार्ज हो जाएंगे, परिणामस्वरूप उन क्षेत्रों में स्थित कुएं और हैंडपंप नहीं सूखेंगे, बल्कि वे पीने के पानी के साथ-साथ सिंचाई के लिए भी पानी की आपूर्ति करते रहेंगे।

जल संसाधनों के विकास और प्रबंधन की योजना के लिए खंडित दृष्टिकोण पानी की गुणवत्ता को खराब कर रहा है। उचित योजना बनाकर उन्हें समयबद्ध कार्यक्रम के तहत कार्य पूरा करने के लिए क्षेत्रवार जिम्मेदारियां दी जाएं। पहली और सबसे महत्वपूर्ण कार्रवाई हर पुराने और नए घर में छत पर वर्षा जल संचयन संरचना (आरटीआरडब्ल्यू) का निर्माण होना चाहिए, जैसा कि तमिलनाडु में किया गया है। सरकार को इसे अनिवार्य बनाने के लिए नियम जारी करने चाहिए। ऐसी संरचनाओं का आकार छत क्षेत्र के आकार और तदनुसार संरचना के निर्माण पर होने वाले व्यय के अनुपात में होगा। यदि यह प्रस्ताव क्रियान्वित हो जाता है तो पेयजल सहित घरेलू उपयोग के लिए पानी की अधिकांश कमी दूर हो जायेगी। इस कार्रवाई से वर्षा जल का भूमिगत संरक्षण होगा और भूजल स्तर में वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप हैंडपंपों और ट्यूबवेलों की विफलता जैसी समस्या समाप्त हो जाएगी। भूजल की गुणवत्ता में भी सुधार होगा। लोगों को आरटीआरडब्ल्यू कटाई संरचनाओं के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करने के लिए पड़ोसी राज्य उड़ीसा द्वारा अपनाई गई प्रथा का अनुसरण झारखंड में भी किया जाना चाहिए। उड़ीसा का जल संसाधन विभाग उचित निरीक्षण के बाद लोगों को आरटीआरडब्ल्यू कटाई संरचना की लागत का 50% सब्सिडी भुगतान करता है। झारखंड में वर्तमान में प्रचलित प्रथा उन लोगों से 1.5 गुना होल्डिंग टैक्स वसूलने की है, जिन्होंने उक्त संरचना का निर्माण नहीं किया है। यह कोई उत्साहवर्धक प्रथा नहीं है जो प्रचलित है।

निष्कर्ष -

लोगों को जागरूकता एवं प्रशिक्षण के लिए सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट (सीएसई) द्वारा रेन सेंटर की स्थापना आवश्यक है। उक्त वर्षा केंद्र में लोगों को शिक्षित करने के लिए वर्षा जल संचयन की पूरी प्रक्रिया को अच्छी तरह से प्रदर्शित किया है। इसके अलावा वे संरचना के निर्माण के लिए सभी आवश्यक सामग्री प्रदान करते हैं और वर्षा जल संरक्षण आंदोलन के नेतृत्व का स्वागत करते हैं। ऐसे केंद्र में भूजल रिचार्जिंग प्रणाली, पीने के पानी के लिए भंडारण प्रणाली, कपड़े धोने के लिए पानी, पानी की गुणवत्ता निर्धारण के लिए परीक्षण किट का उपयोग आदि देखा जा सकता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आदिवासी समाज ने जल संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

****

संदर्भ-

1. इंडिगेनिटी, लैंडस्केप एंड हिस्ट्री : आदिवासी सेल्फ फैशियनिंग इन इंडिया, रूटलेज, अशोका कुमार सेन, 2018, पृष्ठ सं. 157-165.
2. ट्राइबल फिलोसोफी: बेस्टसेलर बुक, संतोष कीरो, प्रभात प्रकाशन, 2022, पृष्ठ सं 61
3. स्टेट,सोसाइटी , एंड ट्राइब्स : इश्यूज इन पोस्ट -कोलोनियल इंडिया, विरजनियस खाखा, पीरसोन, 2008, पृष्ठ सं 105

अंतर्जालीय स्रोत-

1.https://biblicalstudies.org.uk/pdf/ijt/38-1_072.pdf,
2.https://jharenvis.nic.in/Database/JHARKHANDDEMOGRAHY_2323.aspx
3.https://timesofindia.indiatimes.com/city/ranchi/good-rainfall-helped-maintain-surface-water-level-in-state-this-year/articleshow/10312188.

नासिरा शर्मा की कलम उन्नायिका की दस्तावेज

रमेश प्रसाद पटेल
शोधार्थी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (मध्य प्रदेश)

डॉ. अमित शुक्ला
शोध निर्देशक एवं प्राध्यापक हिंदी विभाग
ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (मध्य प्रदेश)

सारांश-

स्त्रियों के उन्नयन और आत्मनिर्भरता का प्रश्न हमेशा समाज में उठता रहा है। स्त्रियों को सम्मान और बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए, नासिरा शर्मा अपने उपन्यास में और कहानियों में प्रयासरत दिखती है। नारी का सम्मान एक सभ्य समाज का निर्माण करता है। समाज कितना सभ्य और सुसंस्कृत है इसका पता नारी की स्थिति को देखकर चलता है। समाज में अधिकांश व्यक्ति,नारी का सम्मान और उनके गरिमा का ख्याल रखते हैं, लेकिन कुछ विकृत मानसिकता के लोग भी समाज में है जो स्त्रियों को घर की नौकरानी की तरह देखते हैं। अधिकांश ऐसे लोग भी हैं जो स्त्रियों को पुरुषों के बराबर दर्जा देने के पक्षधर नहीं हैं । इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर नासिरा जी। नारी मुक्ति और नारी आत्मनिर्भरता को अपने लेखन में अधिक महत्त्व देती है।

मूल शब्द-स्त्रियाँ, उन्नति, संघर्षशील, मुक्ति।

प्रस्तावना-नासिरा शर्मा ने शाल्मली उपन्यास में स्त्री का दृढ़ और संघर्षशील रूप का वर्णन किया। शाल्मली एक पात्र के रूप में ही नहीं, अपने पति के विचारों से सामंजस्य बिठाने की कोशिश करती हुई उसके कुंठित मानसिकता और हीनता के कारण अपमानित होकर, भाग्य पर रोते रहने के बजाय अपने दृढ़ विचार और आत्मविश्वास को कायम रखकर परिस्थितियों से लड़ती रहती है और अपने नारी स्वाभिमान को जिंदा रखती है, शाल्मली नारी की मन: स्थिति को उजागर करती है, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्वरूप और स्त्री मुक्ति की संभावनाओं पर बात करने से पहले स्वयं स्त्री को समझने की बात करती है, आखिर स्त्री को कैसी आजादी चाहिए? और किससे ?

शाल्मली को पिता पढ़ा लिखाकर एक आत्म निर्भर में लाना चाहते हैं और उसके लिए वह काफी प्रयास भी करते है। नरेश के साथ विवाह करा देते हैं कि नरेश उसका साथ जीवन भर देगा, लेकिन नरेश की मानसिक कुंठा और स्त्री को बस में रखने की रूढ़िवादी सोच ने, शाल्मली को अपने वैवाहिक जीवन के कटु अनुभव और परेशानियों से वह अंदर ही अंदर घुटते हुए जीती है तथा वह दिन अपने अधिकारों के प्रति सावधान हो जाती है। उसके अंदर की स्वाभिमानी नारी जाग उठती है और शाल्मली अपने अधिकारों के लिए। लड़ने लगती है। शाल्मली के चरित्र के आधार पर नासिरा शर्मा ने स्त्री के उत्थान एवं स्वतंत्रता की बात कही है।

नासिरा जी ने ठीकरे की मगनी, उपन्यास में महरूख को भी स्त्री उन्नायिका के रूप में चित्रित किया. महरुख एक संघर्षशील और मेहनती लड़की है। समाज की पाबंदियों के बावजूद वह अपने जीवन को अपने ढंग से जीती है।

नासिरा शर्मा के कहानी संग्रह खुदा की वापसी की कहानी में स्त्री वर्ग के शोषित युवा मन की कराहटें है, जो शिक्षित व अशिक्षित स्त्री ही है। जिसका मन संभावनाओं से भरा है उसके अंदर उमंगें है। वो जिंदगी को जिंदगी की तरह जीना चाहती है। खुले आकाश में पंख लगाकर उड़ना चाहती है।

पारिजात उपन्यास में नासिरा जी के उपन्यास की कथावस्तु में इतिहास कहीं किरदार बनकर उभरता है तो कहीं वर्तमान और अतीत के बीच सूत्रधार की भूमिका निभाता नजर आता है। पर्याप्त केवल एक वृक्ष कथा और विश्वास मात्र नहीं बल्कि यथार्थ की धरती पर लिखी एक ऐसी तमन्ना है। जो रोहन के खून में रेशा रेशा बनकर उतरी है और रूही के श्वासों में एक ख्वाब बनकर घुल गई है। उपन्यासों में पारिजात एक रूपक नहीं? दरअसल नए पुराने रिश्तों की दांस्तान है.रही वक्त के मार से घबराने की जगह पर अपनी एक नई जिंदगी को तलाशने का साहस करती है। कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा का सभी उपन्यासों में सृजनात्मकता का निचोड़ है, जिसमें उनके विचार, भाषा, संवेदना और नारी विमर्श का उच्च समीक्षा देखने को मिलता है। 1971 के दशक में सारे बदलावों के बावजूद स्त्री की आर्थिक, सामाजिक स्थिति में कोई उत्साहजनक परिवर्तन नहीं हुआ। इस दशक के बाद भारत में नारीवादी आंदोलन की सक्रियता बढ़ी. बालिका, लिंग भेद, नारी स्वास्थ्य और स्त्री साक्षरता जैसे विषयों पर भी नारी आंदोलनकारी सक्रिय हुए। हिंदी कहानी ने भी इस तथ्य को गंभीरता से लिया। महिला कहानीकारों में प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में नासिरा शर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नासिरा शर्मा को जहाँ हिंदू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का अच्छा अनुभव होने के साथ दोनों धर्मों तथा अन्य धर्मों की स्त्रियों की संवेदनाओं एवं मानवीय चेतना की गहरी अनुभूति भी है। नासिरा शर्मा की कहानियाँ स्त्री पुरुष संबंधों की गहरी पड़ताल भी करती है। वर्तमान समय में स्त्री जीवन की अनेक विडंबनाओं। और सवालों को भी उठाती है। इस दशक की एक विशेष प्रवृत्ति नारी आंदोलन का नया रूप ग्रहण करना है, जिससे कहानियों में स्त्री विमर्श केन्द्रीयता प्राप्त

करने लगता है। ध्यान देने वाली बात है कि नारी नियति का चित्रण करने में कहानी लेखिकाएं प्रमुख भूमिका निभाती है, जिसमें नासिरा शर्मा प्रमुख रूप से उभर कर सामने आती है। नासिरा शर्मा के कहानी संग्रह बुत खाना की पहली कहानी नमक दान है. यह कहानी पति पत्नी के संबंधों को बयां करती है, जिसमें कहानी का नायक जमाल और नायिका गुल दोनों पति पत्नी हैं। जमाल अक्सर पत्नी को छिड़कता रहता है, छोटी- छोटी बातों पर विवाद करता है, परंतु गुल कभी भी पुरुष की नारी के प्रति उपेक्षा वाली दृष्टि से घबराती नहीं है। वह भारतीय नारी की पहचान है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में पिछले 70 वर्षों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों में बदलाव होते रहे हैं पर महत्वपूर्ण बदलाव महिलाओं की दशा में दृष्टिगत हुआ है। महिला सशक्तीकरण के द्वारा महिलाओं की स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन हुआ है। हिंदी साहित्य के समकालीन लेखेकों में महिला रचनाकारों की रचनाएं स्त्री चेतना से अछूती नहीं रही। इन महिला रचनाकारों के बहुतायत उपन्यास महिला प्रधान है, यह उनकी परिस्थितियों से रूबरू होते रहे। मन्नू भंडारी का महाभोज उपन्यास राजनैतिक संदर्भों को उजागर करता है तो वहीं प्रभा खेतान के और पीली आंधी। उपन्यास कुमारी का जीवन की विसंगतियो को दर्शाते हैं। साथ ही ममता कालिया का बेघर नरक दर नरक स्त्री जीवन की विडंबना को दर्शाता है।

इन्हीं समकालीन रचनाकारों में एक शख्सियत है नासिरा शर्मा। नासिरा शर्मा ने अपने कथासाहित्य में न केवल स्त्री समस्याओं का उल्लेख किया है। अपितु समाधान भी प्रस्तुत किया है। कुमार पंकज के शब्दों में "नासिरा शर्मा उन रचनाकारों में हैं, जिन्होंने। महिला मुद्दों को अपने कलम का निशाना बनाया। यह सच है कि महिला के दर्द को महिला से बेहतर भला कौन जान सकता है।"[1] इनकी कहानियाँ मध्यम वर्ग की उस नारी की है जो नारी त्रासदी एवं विकृत मनोवृत्ति या वह मानसिक तनाव के बीच जीती हैं। इनके कथा साहित्य में स्त्री की भावनाओं और संवेदनाओं का इतना मार्मिक चित्रण है कि पाठक वर्ग कहानियों के पात्र में स्वयं की झलक देखता है।

नारी की भावनाओं की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति से। नासिरा जी ने समाज में नारी के अस्तित्व को अस्मिता प्रदान की। नारी जीवन की तमाम जटिलताओं ने उनकी लेखनी को संस्कार प्रदान किया। उनके कथा साहित्य में स्त्रियों के अनेक मुद्दों पर खुली चर्चा हुई है। आधुनिकता के नाम पर स्त्री स्वच्छता की पक्षधर नहीं है, इसीलिए उनकी नारी मात्र आधुनिक होकर भी उस श्रृंखला नहीं है। पत्थरगली, नासिरा जी का पसंदीदा कहानी संग्रह है। उन्होंने इस कहानी संग्रह के संबंध में लिखा है –"यह कहानियाँ धरती पर बसे किसी भी इंसान की हो सकती है क्योंकि दर्द सर्वव्यापी है, फिर भी इन कहानियों की अभिव्यक्ति का स्रोत एक विशेष परिवेश है।"[2] पत्थरगली कहानी की मुख्यपात्र। फरीदा है, लेकिन अब पत्थर गली कहानी फरीदा की नहीं बल्कि उस समाज की है जो रंग बिरंगे होते हुए भी एक जैसी समस्या से जूझ रहा है। उसकी सारी सहेलियों के घर की यही कहानी है, जिनके भाई कुछ नहीं करते हैं, जिनके बाप नहीं हैं उनको अपनी आजीविका के लिए दूसरों के सामने हथियार डालने पड़ते हैं। पत्थर गली में फरीदा और बड़े भाई की टकराहट पुरानी और नई सोच के साथ आपसी अहम की टकराहट है। "रुढ़ियों के घटाटोप में ढका हुआ समाज, विशेष का नारी जाति की घुटन, बेबसी और मुक्ति की छटपटाहट का जैसा चित्रण इस कहानी में हुआ है, अन्यत्र दुर्लभ है।"[3] इस कहानी संग्रह के विषय में नासिरा शर्मा जी का कहना है, -"मेरी ये कहानियाँ दुख और मुजरा के सुख का मोह भंग करती हुई एक ऐसी गली की सैर कराती है जो पत्थर की गली है। इस पत्थर की गली में रहने वाले अपने निकास के लिए छटपटाते पत्थर से टकरा तक राका लहूलुहान होते हैं."[4]

संगसार कहानी संग्रह में कई कहानियाँ ऐसी है जो स्त्री की बुनियादी अस्मिता की दास्तांन हैं । संगसार कहानी की आशिया प्रेम की पवित्रता का सच्चा नमूना है। पति के साथ बेवफाई के बावजूद उसके विवाहेत्तर प्रेम संबंध में जुदाई, है। उसे कोर्ट द्वारा संग सार करने की सजा सुनाई गई है। "उस रात औरतों ने चूल्हे नहीं जलाये, मर्दों ने खाना नहीं खाया। सब एक दूसरे से आंख चुराते हैं। यदि आशिया गुनाहगार है तो उसके संगसार होने पर यह दर्द या कसक उसके दिलों को क्यों मथ रही थी?"[5] गूंगा आसमान कहानी की मेहर अन्नीज अपने लंपट, लेकिन सत्ता पोषित पति के चंगुल से तीन जवान स्त्रियों को छुटकारा दिलाती है। यहाँ एक स्त्री के चारित्रिक बहादुरी व साहस का चित्रण है। दरवाज ए -कजविन की मरियम ऐसी औरत है जो समाज की सड़ी गली रश्मो का शिकार है। मरियम की नीयत यही है। वह पूछती है-"क्या बदलाव इसलिए चाहते थे? हमारा गुनाह क्या था? क्या इस बदलाव के बावजूद स्त्री की स्थिति जस की तस है? की उसका शोषण मानसिक और शारीरिक स्तर पर लगातार होता रहे? उसकी हालत कमतर बनी रहे। ये कहानी औरत की मजबूरी की त्रासद दस्तान है।"[6] नमक का घर कहानी की शहर बाना अपने खोए घर और गुमशुदा परिवार की त्रासदी झेलती औरत खुदा की वापसी संग्रह की कहानियों में दुखियारी नायिकाएं विभिन्न कारणों से पति को छोड़कर भाई,माँ,पिता के घर आश्रय लेने के लिए मजबूर हो जाती है। नासिरा जी ने अपने आस पड़ोस में इस माहौल को महसूस किया और इसे अपनी लेखनी से कहानियों में उकेरा है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ विभिन्न वर्गों की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। मेरा घर

कहाँ में लाली धोबन की बेटी? सोना हो या नई, हुकूमत की हजारा या बचाव की नायिका रेहाना हर कहानी में नारी संघर्ष और उत्पीड़न का जीता जागता उदाहरण मौजूद हैं। चार बहने, शीश महल की में शरीफ़ के घर में लड़की का पैदा होना अपशगुन माना जाता है। बाहर दुकान पर चूड़ी पहनाते हुए लड़की के जख्मी हाथ देख शरीफ का दिल भी जख्मी हो जाता है। जिन औरतों व लड़कियों की बदौलत उसकी जिंदगी की गाड़ी चल रही है, रोटी नसीब हो रही है, उसी के घर में लड़की का पैदा होना मनहूसियत की बात है।

बुतखाना कहानी संग्रह की कहानी अपनी कोख भ्रूण परीक्षण पर लिखी गई कहानी स्त्री की स्वायत्तता, उसके बजूद व आत्मनिर्भरता की कहानी है । उसकी नायिका साधना विवाह के उपरांत दो बच्चियों की माँ बन जाती है। तीसरी बार उससे अपेक्षा की जाती है कि भ्रूण परीक्षण में यदि इस बार भी पुत्री हो तो गर्भपात करा लें। गर्भ में पुत्र होने पर भी वह यह सोचकर वह गर्भपात करा देती है कि पुत्र होने पर उसकी पुत्री के साथ भेदभाव बढ़ जाएगा। ये कहानी एक अनकहा सत्य है। शाल्मली उपन्यास में स्त्री का शोषण भेदभाव, अत्याचार, पत्नी की सफलता के कारण पति में कुंठा भाव, वैवाहिक औपचारिकता की अभिव्यक्ति है।" इसमें परंपरागत नायिका नहीं है, बल्कि वह अपनी मौजूदगी से यह अहसास जगाती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति का सरोकार चाहे जितना गहरा हो पर उसे तोड़ दिए जाने के प्रति मौन स्वीकार नहीं होना चाहिए।"[7] ठीकरे कि मंगनी उपन्यास की नायिका महरुख शाल्मली की तरह धीर गंभीर एवं आत्मनिर्भर नारी है। वह समाज के बंधनों के कारण घुटन भरा जीवन व्यतीत करती हुई आत्मसमर्पण नहीं करती अपितु विपरीत दिशा में उसका सामना भी करती है।

नासिरा शर्मा का ईरान की खूनी क्रांति पर लिखा बहुचर्चित उपन्यास, सात नदियां एक समंदर सात महिलाओं को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास उनके साझे दर्द को बयान करता है।फैज ने कहा है - बड़ा है दर्द का रिश्ता, ये दिल गरीब सही. तुम्हारे नाम पर आएँगे, गम -गुसार चले। यही से दर्द फैलता है, पूरी कायनात पर छा जाता है। ईरान क्रांति में जनता पर होने वाले अत्याचारों का संवेदनशील चित्रण सात महिलाओं के साथ किया। नासिरा जी ने इस उपन्यास के लिए लिखा, "मेरे इस उपन्यास में इंसान की आरजू, तमन्ना और इच्छा से भरे अधूरे सपनों का बयान है, जो किसी भी व्यक्ति की निजी धरोहर हो सकता है।"[8] कोई भी युद्ध क्रांति हो, उससे सबसे ज्यादा प्रभावित स्त्रियां ही होती है. सबसे अधिक पीड़ा यंत्रणा स्त्री को ही झेलनी पड़ती है। उपन्यास, कहानी संग्रह के अलावा इनका 2003 में लेख संग्रह औरत के लिए औरत प्रकाशित हुआ, जिसमें आपने पूरी संवेदनशीलता और

आत्मीयता के साथ न केवल देश वरन, विदेश तक की औरतों की समस्याओं को दिशाबद्ध करने का प्रयास किया है। इन्होंने जाग्रत होती स्त्री चेतना में आँधियाँ ही नहीं भरी बल्कि बुद्धिमत्ता से नए रास्ते बनाने का जोश भी भरा। इनकी खुली मानसिकता, संतुलित दृष्टि बार-बार स्पष्ट करती है कि मनोमस्तिष्क चेतना और शक्ति में औरत कमतर नहीं है. अपनी पुस्तक के हर लेख में इन्होंने सवस्थ संबंधों पर ज़ोर दिया है। "समाज सिर्फ मर्दों द्वारा नहीं बना बल्कि इसके ताने बाने में मर्द तथा औरत दोनों का वजूद है। मर्द और औरत एक चने की दो दाल है अर्थात दोनों इंसान का रूप है।"[9] नासिरा जी ने औरतों की जिंदगी की एक एक बारीकियों को उनके परिवार के सदस्य की तरह देखा, उनके भरोसे को जीता है। त्रासद पीड़ा झेलती बेबस स्त्रियाँ ममत्व भाव आत्मीयता में जीती हैं और उनसे मुक्त होने का साहस भी नहीं कर पाती। नसीरा जी लिखती हैं, "जिन कुरीतियों एवं परंपरा से भारत मुक्त था, वहीं आज की मुख्य समस्या बन चुकी है, जैसे बंधुआ मजदूरी, इत्यादि लाख कानून बने मगर उसका पालन अभी भी पूरी तरह नहीं हो रहा है। उसी तरह महिलाओं के प्रति बने कानून फ़ाइलों की शोभा अवश्य बन चुके हैं, मगर समाज का दृष्टिकोण अधिक पुरातनपंथी बन गया।"[10] नासिरा शर्मा का कहानी संसार मुख्यत: नारी के प्रति असमानता एवं उसके अस्तित्व की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा अनवरत युद्ध है, उनकी कहानियाँ अपने घर की तहजीब व समाज के अंधेरे को दूर करती हुई वे शमाएँ है, जिसकी रौशनी इतिहास के पन्नों तक फैली हुई है। कहानियाँ केवल कहने- सुनने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अतीत वर्तमान के तारीखी दस्तावेज हैं। जिनको पढ़ा व समझा जा सके। इनकी कहानियों में नारी की जिंदगी का महाकाव्य है. नासिरा शर्मा स्त्री विमर्श की प्रमुख कथाकार हैं । स्त्री विमर्श इस लिए प्रासंगिक है कि उन्होंने महिलाओं के हितों की चर्चा करते हुए स्त्री के बहाने मानवीय सवालों से रूबरू करवाया है। इनकी कहानियों में नैतिकता, ईमानदारी और तहजीब की महीन बुनावट है.इन्होंने अपनी रचनाओं में नारी मन को जबरदस्त तरीके से उकेरा है। नासिरा जी इस्लाम धर्म के आधार पर नारी सशक्तीकरण के साथ- साथ भारतीय मुस्लिम परिवारों की त्रासदी की कहानियों को रेखांकित करती है। साथ ही मुस्लिम स्त्री अधिकार के प्रत्येक पक्ष का उद्घाटन भी करती है। इनकी कहानी की नायिका रोती नहीं, अकेले में भी नहीं।

वहीँ प्रभा खेतान की नायिका आओ पे पें घर चले में कहती हैं – "औरत कब रोती है और कहा नहीं रोती। जितना वह रोती है और उतनी ही औरत होती जाती है।"[11] दोनों की नायिकाओं में इतना फर्क है कि समाज एक अकेली किंकर्तव्यविमूढ़ औरत को रोते देखना चाहता है.

इसलिए वह उसे तरह तरह से रुलाता है, रोते चले जाने का संस्कार देता है। वहीं एक शिक्षित, परिपक्व स्त्री स्वाभिमान की मनोदशा में किसी का कंधा नहीं तलाशती, क्षमता एवं स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर अपने पैरों पर खड़ी होने का साहस करती है। उसे अपनी अस्मिता का बोध है, जिसकी रक्षा करने में वह सक्षम है। यश मालवीय के शब्दों में – "नासिरा शर्मा की कथा साहित्य में औरत आंचल में दूध और आँखों में पानी वाली औरत नहीं है। पितृसत्तात्मक समाज के सामने सीना तानकर खड़ी हो जाती है, प्रतिरोध के स्वर मुखरित करने लगती है। इन कहानियों को पढ़कर नींद नहीं आती बल्कि आयी हुई नींद कई-कई रातों के लिए उड़ जाती है।"[12]

क्या हम आज 21 वीं सदी में इस मानसिकता से बाहर आ गए हैं कि लड़का हो या लड़की उस में कोई अंतर नहीं है। पड़ताल करने पर पाएंगे कि कुछ परिवर्तनों के साथ उसमें कोई बदलाव नहीं आया है। इन्हीं बातों और विचारों को व्यक्त करती है यह कहानी। अपनी कोख इसके पात्र साधना, संदीप और सरिता हैं। नासिरा शर्मा की एक अन्य कहानी अपनी कोख में स्त्री की उस समस्या को उजागर करती है जिसका स्त्री प्राचीन काल से ही सामना कर रही है। यह प्रश्न है स्त्री के पहचान, अस्तित्व और अधिकार का, जिसका यह पुरुष सत्तात्मक समाज हमेशा से गला घोंटता आया है। यद्यपि आज हम बात करते हैं समानता, समान अधिकारों,बराबरी का दर्जा देने की, और सबसे बड़ी बात की लड़के लड़की में भेद ना करने की।

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त कथन से यह बात निकलकर आती है कि भारतीय समाज की उन सभी स्त्रियों को यह अपने नियति मान लेनी चाहिए, जिसके पति जमाल जैसे लोग हैं, नहीं तो आए दिन विवाद होगा या संबंध विच्छेद. दोनों के लिए एक स्त्री को तैयार रहना पड़ेगा, क्योंकि इस सभी के पीछे एक पुरुषवादी मानसिकता कार्य करती है। हम पुरुष हैं, चाहे जो करे परंतु तुम स्त्री हो, पति व्रत का पालन करना तुम्हारा धर्म है, परंतु पत्नी व्रत का पालन करना हमारा धर्म नहीं है, क्योंकि यह नियम हमने बनाए हैं।

****

संदर्भ ग्रंथ।

1. नासिरा शर्मा: ठीकरे की मगनी
2. नासिरा शर्मा शालमली
3. नासिरा शर्मा खुदा की वापसी
4. नासिरा शर्मा अपनी कोख
5. नासिरा शर्मा, पारिजात
6. कुमार पंकज जिन्दगी के असली चेहरे आजकल पत्रिका
7. नासिरा शर्मा मेरे जीवन पर किसी के हस्ताक्षर नहीं।
8. शर्मा डॉक्टर नीलम मुस्लिम कथाकारों का हिंदी योगदान
9. शर्मा नासिरा पत्थर गली, राजकमल प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2011
10. नासिरा शर्मा, संग सार, वाणी प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2009
11. नासिरा शर्मा संग सार ,वाणी प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2009
12. शर्मा नासिरा,शाल्मली, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली- संपादन 2013

जनजातीय विकास और राजनीतिक सहभागिता

इन्द्र बहादुर सिंह
शोधार्थी-सहायक प्राध्यापक-राजनीति विज्ञान
शासकीय महाविद्यालय जैतपुर शहडोल म.प्र.

शोध सारांश:-भारतीय समाज के प्रत्येक दृष्टिकोण से सबसे पिछड़े जनजातीय समाज के उत्थान के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लगातार प्रयास किये जाते रहे हैं। देश के विकास हेतु जनजातियों के विकास की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुये संविधान में अनेक प्रावधानों का समावेश किया गया है। इन संवैधानिक प्रावधानों की रूपरेखा के आलोक में इन वर्गों के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक इत्यादि विकास के लिए अनेक नीतियाँ, योजनाएं एवं कार्यक्रम चलाये गये, परन्तु अपेक्षित सफलता फलीभूत नहीं हो पाई। इसका अनेक कारणों में सबसे प्रमुख कारण इन वर्गों में राजनीतिक सहभागिता एवं जागरूकता का अभाव है जनजातीय विकास एक समृद्धि और सामाजिक समानता की ओर कदम बढ़ाने की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है और इसके महत्व को समझने के लिए राजनीतिक सहभागिता का आदर्श महत्वपूर्ण होता है,क्योंकि यह समुदायों को स्वशासन में शामिल करता है और उनके लिए उनकी आवश्यकताओं और अधिकारों को सुनिश्चिति करता है। निहित प्रावधानों के तहत निश्चित रूप से जनजातियों की राजनीतिक सहभागिता एवं जागरूकता में वृद्धि हुई है।

मूल शब्द- जनजातीय विकास, राजनीतिक सहभागिता,जागरूकता

प्रस्तावना:-जनजातीय समुदायों के विकास में राजनीतिक भागीदारी की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह जनजातीय सदस्यों को निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में आवाज उठाने की अनुमति देता है जो उनके जीवन, संसाधनों और अधिकारों को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक सहभागिता उन्हें अपनी आवश्यकताओं की वकालत करने, सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और भूमि अधिकार, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आर्थिक अवसरों जैसे मुद्दों को संबोधित करने में सक्षम बनाती है। स्थानीय और राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेकर, आदिवासी समुदाय उन नीतियों और कार्यक्रमों को प्रभावित कर सकते हैं जो उनके सामाजिक-आर्थिक विकास और समग्र कल्याण में योगदान करते हैं।

जनजातीय विकास समृद्धि और सामाजिक समानता की ओर कदम बढ़ाने की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।जनजातीय समुदायों के विकास में राजनीतिक सहभागिता का महत्व बढ़ रहा है क्योंकि यह समुदायों को स्वशासन में शामिल करता है और उनके लिए उनकी आवश्यकताओं और अधिकारों को सुनिश्चिति करता है।

इस शोध पत्र में हम जनजातीय समुदायों के साथ राजनीतिक सहभागिता के महत्व को समझने का प्रयास किया गया है। इसके माध्यम से उन चुनौतियों को समझने का प्रयास भी किया गया है जो राजनीतिक विकास के मार्ग के बाधक हैं। इस शोध का उद्देश्य, सकारात्मक प्रयासों की जरूरत को बढावा देना है जो जनजातियों के साथ राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से एक न्यायपूर्ण और समृद्ध भविष्य का मार्ग प्रशस्त करते हों।

विकास की अवधारणा-'विकास'की अवधारणा मुख्यतः द्वितीय विश्वयुध्द के बाद नवोदित देशों के मार्गदर्शन के उद्देश्य से विकसित की गई। विकास' शब्द अपने व्यापकतम अर्थ में उन्नति, प्रगति, कल्याण और बेहतर जीवन की अभिलाषा के विचारों का वाहक है। कोई समाज विकास के बारे में अपनी समझ के द्वारा यह स्पष्ट करता है कि समाज के लिए समग्र रूप से उसकी दृष्टि क्या है और उसे प्राप्त करने का बेहतर तरीका क्या है? हालाँकि, विकास शब्द का प्रयोग प्रायः आर्थिक विकास की दर में वृध्दि और समाज का आधुनिकीकरण जैसे संकीर्ण अर्थों में भी होता रहता है। विकास एक जटिल एवं निरंतर क्रिया है। इसे विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रित किया गया है। समाजवेत्ता विकास की व्याख्या सामाजिक विभेदीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में करतें हैं। अर्थशास्त्री विकास को आर्थिक उत्पादन एवं उच्च जीवनयापन के ढंग से सम्बध्द करते है। राजनीतिशास्त्री प्रजातांत्रिक सहभागिता के सन्दर्भ में विकास का मार्ग ढूँढ़तें हैं। इन सभी दृष्टिकोणों के पीछे सामान्य सी बात है-"मानव जीवन के गुणात्मक पक्ष में वृध्दि।"

जनजातीय विकास-विकास शब्द की उत्पत्ति ही गरीब, उपेक्षित व पिछड़े लोगों के सन्दर्भ में हुई। अतः विकास को इन्हीं की दृष्टि से देखना जरुरी है। विकास को साधारणतया ढाँचागत विकास के रूप में ही देखा जाता है, जबकि यह विकास का एक पहलू मात्र है। विकास को समग्रता में देखना जरूरी है, जिसमें मानव संसाधन, प्राकृतिक संसाधन, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, सांस्कृतिक, व नैतिक व ढाँचागत विकास शामिल हो। विकास के इन विभिन्न आयामों में गरीब, उपेक्षित, पिछडे वर्ग व संसाधनहीन की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के समाधान प्रमुख रूप से परिलक्षित हों। वास्तव में विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो सकारात्मक बदलाव की ओर इशारा करती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अनुसार-"विकास का तात्पर्य है सामाजिक व्यवस्था,सामाजिक संरचना,संस्थाओं,सेवाओं की बढ़ती क्षमता जो संसाधनों का उपयोग इस प्रकार से कर सके ताकि जीवन स्तर में अनुकूल परिवर्तन आये। 'विकास' एक व्यापक अवधारणा है। जनजातीय विकास के सन्दर्भ में यह अवधारणा एवं विकास की प्रक्रिया और भी जटिल हो जाती है। जनजातीय विकास को सतत् प्रक्रिया के रूप में लेना चाहिए और विकास के लक्ष्य व्यवहारिक एवं योजनाबद्ध होने चाहिए। राजनीतिक सहभागिता-राजनीतिक सहभागिता का अभिप्राय राजनीतिक भागीदारी से है। "राजनीतिक भागीदारी से अभिप्रायः उन ऐच्छिक क्रियाओं से है जिनके द्वारा समाज के सदस्य अपने शासकों अथवा सत्ताधारियों के चुनाव में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से तथा सार्वजनिक नीति-निर्माण प्रक्रिया में भाग लेते हैं।" इसके माध्यम से "साधारण जनता की निर्णय-निर्माण प्रक्रिया अथवा नीति-निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित होती है। दूसरे शब्दों में राजनीतिक सहभागिता से अभिप्राय नागरिकों को वैसी विधिसम्मत गतिविधियों से है जिसका उद्देश्य कमोबेश मात्रा में प्रत्यक्ष रूप से सरकारी तंत्र के कार्यों को प्रभावित करना है। राजनीतिक सहभागिता जनजातियों के विकास के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उन्हें उनके हकों और आवश्यकताओं की रक्षा करने का एक माध्यम प्रदान करता है। जनजातियों को सरकारी निर्णय में भाग लेने का अधिकार होता है, जिससे उनके समुदाय के मुद्दे और समस्याएँ सुनी जा सकती हैं।

जनजातीय समाज का स्वरूपः समस्याएँ और चुनौतियाँ:- भारतीय समाज का वह अंग जो वन क्षेत्रों या दूरदराज़ के क्षेत्रों में रहती हैं तथा जिनकी अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति तथा पृथक पहचान है। ये जनजातियाँ जंगल, जमीन एवं प्रकृति से आदिकाल से जुडी हुई हैं। किन्तु बदलते दौर में विकास एवं आधुनिकता की होड़ के कारण अनेक समस्याएँ उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में घर कर गई हैं। इन सब में आदिवासी समुदायों के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों में से एक सुरक्षित भूमि अधिकारों की कमी है। अनेक जनजातियाँ जहाँ भूमि और संसाधनों पर उनके पारंपरिक अधिकारों को अक्सर मान्यता नहीं दी जाती है जिससे विस्थापन एवं भूमि अलगाव की स्थिति उत्पन्न होती है। सामाजिक-आर्थिक पहुँच का अभाव जनजातीय आबादी की स्थिति अक्सर सामाजिक-आर्थिक रूप से हाशिये पर होती है जिसमें गरीबी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल एवं स्वच्छ पेयजल तथा स्वच्छता सुविधाओं जैसी बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच की कमी शामिल है।शिक्षा अंतराल जनजातीय आबादी के बीच शिक्षा का स्तर आमतौर पर राष्ट्रीय औसत से कम है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच की कमी, सांस्कृतिक बाधाएँ और भाषायी अंतर आदिवासी बच्चों के शैक्षिक विकास में बाधा बन सकते हैं।

शोषण और बंधुआ मज़दूरी कुछ आदिवासी समुदाय शोषण, बंधुआ मज़दूरी एवं मानव तस्करी के प्रति संवेदनशील हैं, विशेषकर दूरदराज़ के क्षेत्रों में जहाँ कानून प्रवर्तन कमज़ोर है।सांस्कृतिक क्षरण भी तीव्रता से हो रहे हैं। शहरीकरण एवं आधुनिकीकरण से जनजातीय संस्कृतियों, भाषाओं और उनकी पारंपरिक प्रथाओं का क्षरण हो सकता है। युवा पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने में

चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। प्रतिनिधित्व का अभाव सुरक्षात्मक उपायों के बावजूद जनजातीय समुदायों को प्रायः अपर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व का सामना करना पड़ता है, साथ ही निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में एक प्रबल प्रतिनिधित्व की कमी होती है जो उनके कल्याण और अधिकारों से संबंधित होती है।

जनजातियों में राजनीतिक सहभागिता की स्थिति एवं विकास- सामाजिक और सांस्कृतिक जागरूकता जनजातियों को उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूक करने के लिए राजनीतिक सहभागिता का माध्यम उपयोगी हो सकता है। इसके तहत, वे अपनी पारंपरिक ज्ञान को सुरक्षित रखने और बढ़ावा देने के लिए कई सांस्कृतिक कार्यक्रम और उत्सव आयोजित कर सकते हैं। शिक्षा जनजातियों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में राजनीतिक सहभागिता का माध्यम, उन्हें शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने और बेहतर शिक्षा सुविधाओं के लिए समर्थन प्राप्त करने में मदद कर सकता है। आर्थिक विकास जनजातियों के सदस्य राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से अपने आर्थिक विकास के लिए योजनाएं बना सकते हैं, जैसे कि सामुदायिक उद्योग, कृषि और नौकरियों के अवसरों का श्रेय पाने के लिए सामूहिक उपाय। राजनीतिक प्रतिनिधिता राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से, जनजातियाँ अपने प्रतिनिधिता को सरकारी स्तर पर बढ़ावा देने का प्रयास कर सकती हैं, जिससे उनके हितों की सुरक्षा और समृद्धि में मदद मिल सकती है। समाजिक न्याय जनजातियों के साथ समाजिक और न्याय के मामले में राजनीतिक सहभागिता उनके लिए न्याय की दिशा में कदम बढ़ा सकती है और उन्हें उनके अधिकारों की सुरक्षा करने में मदद कर सकती है।

सरकारी निर्णयों में भागीदारी:-जनजातियों का सहभागी होना सरकारी निर्णयों में उनकी आवश्यकताओं और मुद्दों को समझने में मदद करता है। इससे सरकारी नीतियों को उनके लिए अधिक सही और प्रभावी बनाने का मौका मिलता है।

अधिकारों की सुरक्षा:-राजनीतिक सहभागिता जनजातियों को उनके सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा करने का माध्यम प्रदान करती है। इससे उनकी सुरक्षा और सामाजिक न्याय की दिशा में मदद मिलती है।

रोजगार के अवसर:-जनजातियों का सहभागी होना रोजगार के अधिकार को प्राप्त करने का माध्यम भी हो सकता है। यह सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से उनके आर्थिक विकास को सहयोग कर सकता है।

सामाजिक समरसता:-राजनीतिक सहभागिता समाजिक समरसता की दिशा में मदद कर सकती है, क्योंकि यह जनजातियों को समाज में उनके मुद्दों को उठाने का मौका देती है। इससे उनके सामाजिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

सामाजिक न्याय:-राजनीतिक सहभागिता सामाजिक और न्याय के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि यह जनजातियों को उनके अधिकारों की सुरक्षा करने में मदद करती है और उन्हें सामाजिक न्याय के मामले में बढ-चढ़ कर मौका देती है।राजनीतिक सहभागिता जनजातियों के विकास के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें उनके मुद्दों की रक्षा करने और समाज में सामाजिक समरसता और न्याय की दिशा में मदद मिलती है।

संवैधानिक सुरक्षा:- भारतीय संविधान ने जनजातियों के हकों की सुरक्षा के लिए कई प्रावधान किए हैं। इनमें पंचायती राज प्रतिष्ठानों में जनजातीय प्रतिनिधिता, सामूहिक भूमि के लिए सुरक्षा, और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटें शामिल हैं। जनजाति विकास उनके सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक स्तर की सुधार को दर्शाता है, जबकि राजनीतिक सहभागिता उन्हें सरकारी प्रक्रिया में शामिल होने का माध्यम प्रदान करती है।जनजाति विकास जीवनकूट के समर्पण, आर्थिक विकास, और सांस्कृतिक समृद्धि को स्थायी बनाने के लिए केंद्रित होता है, जबकि राजनीतिक सहभागिता सामाजिक न्याय और समाज में प्रतिनिधिता को बढ़ावा देने के लिए होती है।जनजाति विकास और राजनीतिक सहभागिता, दोनों ही अद्वितीय तरीकों से जनजातियों के समृद्धि और समाज में सामाजिक समरसता की दिशा में मदद कर सकते हैं।समाजिक संगठन और सहभागिता जनजातियों के विकास के लिए समाजिक संगठन और सहभागिता महत्वपूर्ण हैं, और राज्य सरकारों की दशा और दिशा इसे प्रोत्साहित कर सकती है।

इसलिए, जनजातियों के विकास के मुद्दे और जनजातीय राजनीतिक नेतृत्व की दिशा वर्तमान के स्थितित में राज्य के नीति और दृष्टिकोणों पर निर्भर करती हैं, और राजनीतिक सहभागिता का यह माध्यम जनजातियों के लिए विकास की दिशा में महत्वपूर्ण हो सकता है, लेकिन इसमें समर्थन, शिक्षा, और सामूहिक एकजुटता की आवश्यकता होती है ताकि वे अपने उद्देश्यों को हासिल कर सकें।सामाजिक समृद्धि, अर्थव्यवस्था की सुधार और जीवनकूट के सभी अनुभागों के साथ समान और सुसमृद्ध समाज की रचना करना होता है। विकास के कई पहलू होते हैं, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार, और पाश्विक विकास।जनजातीय विकास के मुद्दे वर्तमान राज्य राजनीतिक प्रदेशों में जनजातीय राजनीतिक नेतृत्व की दशा और दिशा भारत के विभिन्न हिस्सों में भिन्न हो सकती है, क्योंकि हर राज्य अपने स्वतंत्र राजनीतिक मांगों और संकेतों के साथ विकसित होता है। हालांकि यह नेतृत्व की दशा और दिशा का अंदाजा लगाने में मदद कर सकता है।

जनजातियों के उत्थान के लिये सरकार द्वारा उठाए गए कदम:- संविधान के पन्नों को देखें तो जहाँ एक तरफ अनुसूची 5 में अनुसूचित क्षेत्र तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण का प्रावधान है तो वहीं दूसरी तरफ, अनुसूची 6 में असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का उपबंध है। इसके अलावा अनुच्छेद 17 समाज में किसी भी तरह की अस्पृश्यता का निषेध करता है तो नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 46 के तहत राज्य को यह आदेश दिया गया है कि वह अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और उनके अर्थ संबंधी हितों की रक्षा करे। साथ ही संविधान एवं सरकार द्वारा जनजातियों के हित में जो प्रभावी प्रावधान किए गए हैं, वे हैं- अनुसूचित जनजातियों के हितों की अधिक प्रभावी तरीके से रक्षा हो, इसके लिये 2003 में 89वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा पृथक राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना भी की गई। संविधान में जनजातियों के राजनीतिक हितों की भी रक्षा की गई है। उनकी संख्या के अनुपात में राज्यों की विधानसभाओं तथा पंचायतों में स्थान सुरक्षित रखे गए हैं।

संवैधानिक प्रावधानों से इतर भी कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें सरकार जनजातियों के हितों को अपने स्तर पर भी देखती है। इसमें शामिल हैं- सरकारी सहायता अनुदान, अनाज बैंकों की सुविधा, आर्थिक उन्नति हेतु प्रयास, सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व हेतु उचित शिक्षा व्यवस्था मसलन- छात्रावासों का निर्माण और छात्रवृत्ति की उपलब्धता तथा सांस्कृतिक सुरक्षा मुहैया कराना इत्यादि। इसी के साथ केंद्र तथा राज्यों में जनजातियों के कल्याण हेतु अलग-अलग विभागों की स्थापना की गई है। जनजातीय सलाहकार परिषद इसका एक अच्छा उदाहरण है।

इन्हीं पहलों का परिणाम है कि जनजातियों की साक्षरता दर जो 1961 में लगभग 10.3 थी वह 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 66.1 तक बढ़ गई। सरकारी नौकरी प्राप्त करने की सुविधा देने की दृष्टि से अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की आयु सीमा तथा उनके योग्यता मानदंड में भी विशेष छूट की व्यवस्था की गई है।

सरकार ने भी जनजातियों के उत्थान की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं अनुसूचित जनजाति (एसटी) के छात्रों के लिये एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय योजना शुरू हुई है। इसका उद्देश्य दूरदराज़ के क्षेत्रों में रहने वाले विद्यार्थियों को मध्यम और उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान करना है। वहीं अनुसूचित जनजाति कन्या शिक्षा योजना निम्न साक्षरता वाले जिलों में अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के लिये लाभकारी सिद्ध होगी। सरकार अपने स्तर पर जनजातियों की स्थिति को सुधारने की दिशा में बेहतर प्रयास कर रही है लेकिन शासन के कार्यों में और ज़्यादा बदलाव की ज़रुरत है। योजनाओं का लाभ जनजातियों तक नहीं पहुँच पाता है। इस रुकावट को दूर करना होगा।साथ ही जनजातियों के प्रति मीडिया की उदासीनता को खत्म करने की दरकार है। प्राय: देखा गया है कि जब तक जनजातियों से संबंधित कोई बड़ा हादसा नहीं हो जाता है अथवा कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता तब तक प्रायः मीडिया भी सचेत नहीं होती है। मीडिया को लोकतंत्र का चैथा स्तंभ माना गया है तो यह ज़रूरी हो जाता है कि वह समाज के हर तबके के प्रति अपने कत्तव्यों का पालन बखूबी करे। वहीं आर्थिक पहलुओं के स्तर पर इनसे जुड़ी समस्याओं को हल करने के लिये आदिवासी परिवारों को कृषि हेतु पर्याप्त भूमि देने तथा स्थानांतरित खेती पर भी रोक लगाने की आवश्यकता है। कृषि के अत्याधुनिक तरीकों से उन्हें अवगत कराना भी एक विकल्प है।

इसके अलावा शिक्षा संबंधी समस्याओं को दूर करने हेतु यह ज़रूरी है कि आदिवासियों के लिये सामान्य शिक्षा तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। स्कूलों में उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाए जिससे कि शिक्षा ग्रहण करने के बाद उन्हें बेकारी की समस्या से न जूझना पड़े। कृषि, पशु-पालन, मुर्गी-पालन, मत्स्य-पालन, मधुमक्खी-पालन एवं अन्य प्रकार की हस्तकलाओं का भी उन्हें प्रशिक्षण दिया जाए। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को हल करने के लिये आदिवासी क्षेत्रों में चिकित्सालय, चिकित्सक एवं आधुनिक दवाइयों का प्रबंधन भी ज़रूरी है। उनके लिये पौष्टिक आहार तथा विटामिन की गोलियों की व्यवस्था की जाए ताकि इनमें कुपोषण से होने वाली बीमारियों को समाप्त किया जा सके। जनजातियों की सबसे प्रमुख समस्याओं में से एक है- उनका सांस्कृतिक अलगाव। लिहाज़ा उनकी इस समस्या को हल करने के लिये ऐसे विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए जहाँ आदिम ललित कलाओं की रक्षा की जा सके। जनजातियों के लिये किये जाने वाले मनोरंजनात्मक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम उन्हीं की भाषा में हों। इसमें उनकी भाषा संबंधी समस्या का भी समाधान निहित है। रही बात समाज के सदस्यों की तो सभी आम नागरिकों का यह कत्तव्य होना चाहिये कि वे अपने हितों के साथ-साथ जनजातियों के हितों की भी रक्षा करें। जब ऐसा होगा तभी हम सेंटिनलीज जनजाति जैसे विशेष समूह के मनोविज्ञान को समझ सकेंगे और उनके जीवन में बेवज़ह हस्तक्षेप नहीं करेंगे। साथ ही जो जनजातीय समुदाय संपर्क में आने को इच्छुक हैं उनका स्वागत करने में भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये।

निष्कर्ष:-राजनीतिक सहभागिता एक महत्वपूर्ण कारक है जो जनजातियों के विकास को समृद्ध करने में मदद करता है। यह उन्हें समाज के साथ बराबरी और न्याय की ओर एक कदम आगे बढ़ने का मौका प्रदान करता है।राजनीतिक सहभागिता जनजातियों को एक मंच प्रदान करती है जिससे वे अपने मुद्दों को सामाजिक संरचना में प्रस्तुत कर सकते हैं।

यह उन्हें अपने समुदाय के लोगों के प्रति प्रतिनिधित्व का मौका देता है और उनकी आवाज़ को सरकार और निर्धारकों के सामने रखने में मदद करता है।राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से, जनजातियों को योजनाएँ और नीतियों में भागीदारी का मौका मिलता है। इससे उनके लिए उनकी आवश्यकताओं और अधिकारों की सुनिश्चिति होती है, और विकास के प्रति उनके सहयोगी भूमिका को बढ़ावा दिया जाता है।राजनीतिक सहभागिता समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक असमानता के खिलाफ एक प्रभावी और नैतिक समरसता का माध्यम बना सकती है। यह जनजातियों को उनके सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा करता है और उन्हें समाज में समानता की दिशा में लड़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। राजनीतिक सहभागिता जनजातियों को विकास के लिए नैतिक और सामाजिक समर्थन प्रदान कर सकती है। इससे उनके लोगों को अधिक साहसी बनाता है और उन्हें उनके समुदाय के लिए सकारात्मक परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। इन तत्वों के साथ, राजनीतिक सहभागिता जनजातियों को विकास के मार्ग पर अधिक प्रभावी और समर्थित बनाती है।

****

सन्दर्भ:-

1 तिवारी,शिवकुमार(2000).मध्यप्रदेश की जनजाति भोपाल म.प. हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
2 श्रीवास्तव,ए.आर.एन.(2007).जनजातीय भारत.भोपाल म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
3 श्रीवास्तव प्रदीप एवं भवानी एम मुखर्जी.(2001).भारत का जनजातीय जीवन.बिलासपुर प्रियंका पब्लिकेशन
4.निशा एवं घिडियाल अवनीत कुमार(2016).राजनीतिक सहभागिता एवं राजनीतिक विकास की अवधारणाएं एक विश्लेषण.इण्डियन स्ट्रीम्स रिसर्च जर्नल (महाराष्ट्र), .

Embracing Continuous Innovation, Adaptation, and Learning with Risk Management Maturity Models

Dr. Sanjay Kumar Singh
Assistant Professor
School of Business Management
IFTM University, Moradabad, U.P., India

Abstract:-In today's rapidly evolving business landscape, organizations face an increasingly diverse array of risks, necessitating effective risk management for long-term success. Risk Management (RM) and Risk Management Maturity Models provide structured frameworks to assess and enhance risk management capabilities. This article explores the concept of continuous innovation, adaptation, and learning within the context of RM Maturity Models, emphasizing the need for evolving risk management practices in a dynamic world. The Evolution of Risk Management traces its journey from an informal community-based approach to a strategic imperative, deeply integrated into organizations. Risk Management Maturity Models serve as invaluable tools for organizations, offering a roadmap for transitioning from reactive to proactive risk management approaches. The evolution of risk management is influenced by historical events, changing business landscapes, technological advancements, and shifting risk paradigms. Continuous innovation in risk management extends beyond technology adoption to innovative approaches for risk mitigation. Adaptation in a Changing Landscape is essential for continuous improvement. Organizations must monitor external factors, regularly update risk assessments, adjust risk strategies, stay informed, and embrace agility. Learning as a Foundational Principle is vital for enhancing risk management maturity. Post-incident analysis, benchmarking, training, feedback mechanisms, knowledge sharing, and documentation review are key aspects of fostering a culture of learning.

Key Words: Maturity, CyberSecurity, Continuous Innovation, Adaptation, and Learning

Introduction:-In the fast-paced and ever-evolving landscape of today's business world, organizations face an increasingly diverse and complex array of risks. From cybersecurity threats to economic uncertainties, the effective management and mitigation of these risks are vital for long-term success. This is where Risk Management (RM) and Risk Management Maturity Models come into play. RM Maturity Models offer a structured framework for organizations to assess and enhance their risk management capabilities. However, achieving a high level of maturity is not a one-time endeavor; it is an ongoing process. In this article, we will delve into the concept of continuous innovation, adaptation, and learning within the context of RM Maturity Models, highlighting the importance of evolving risk management practices to thrive in an ever-changing world.

The Evolution of Risk Management:-Risk management has undergone a significant transformation from being a peripheral concern primarily focused on insurance and compliance to becoming a strategic imperative that permeates every facet of an organization. The dynamic nature of the modern business environment necessitates that risk management continually evolves to address emerging challenges. This evolution is not merely a choice; it is a vital necessity for organizations aiming to remain competitive and resilient. One of the primary tools organizations employ to evaluate their risk management capabilities and drive improvement is the Risk Management Maturity Model (RM-MM). These models provide a structured approach for assessing an organization's risk management practices across various dimensions, including strategy, governance, processes, and technology. Additionally, they furnish a roadmap for transitioning from a rudimentary, reactive risk management approach to a sophisticated, proactive, and integrated one. The evolution of risk management has been profoundly influenced by historical events,evolving business landscapes, technological advancements, and changing paradigms of risk. Below is a concise overview of the significant stages in the development of risk management:

Early Risk Management (Pre-20th Century): In ancient civilizations, risk management took on an informal and community-based nature. People relied on social networks and mutual support to confront risks, such as natural disasters and crop failures. Early forms of insurance began to surface in ancient Babylon and China, as merchants and traders pooled resources to shield themselves from losses.

Industrial Revolution (18th and 19th Centuries): The advent of industrialization ushered in new risks associated with manufacturing, transportation, and urbanization. Insurance companies and institutions like Lloyd's of London played pivotal roles in devising formal mechanisms for transferring risk, which were designed to address these emerging challenges.

Risk Engineering and Safety Movements (Late 19th and Early 20th Centuries): As industrialization expanded, the need for risk control became increasingly evident. Engineers and safety experts started to concentrate on accident prevention and risk minimization, particularly in industries like mining, manufacturing, and transportation. This era marked the inception of risk engineering and the establishment of safety standards.

Post-World War II Era (Mid-20th Century): The aftermath of World War II and the rise of multinational corporations introduced greater complexity to the risk landscape. Insurance companies began offering broader coverage, including liability insurance, while risk management departments within organizations became more commonplace.

Financial Risk Management (Late 20th Century): The latter half of the 20th century witnessed a significant expansion of financial markets and instruments. During this period, financial risk management emerged as a distinct discipline, focusing on managing market

risk, credit risk, and liquidity risk. Quantitative risk modeling and risk analytics gained prominence.

Enterprise Risk Management (Late 20th Century to Present): With organizations facing an ever-widening array of risks, the concept of enterprise risk management (ERM) came to the fore. ERM integrates risk management throughout an organization, covering operational, financial, strategic, and compliance risks. It emphasizes a comprehensive approach to risk governance.

Technological Advancements (Late 20th Century to Present): The advent of information technology revolutionized risk management. Advanced risk modeling tools, data analytics, and risk assessment software have empowered risk professionals to enhance risk quantification and decision-making.

Globalization and Regulatory Changes (Late 20th Century to Present): The process of globalization heightened the intricacy of risk management, necessitating that organizations address international risks such as geopolitical instability and supply chain disruptions. Concurrently, regulatory changes, particularly in the financial sector, imposed more stringent risk management requirements.

Cyber Risk Management (21st Century): The digital age introduced a new category of risks, primarily cyber threats. Organizations are now compelled to manage risks related to data breaches, cyberattacks, and the safeguarding of sensitive information.

Sustainability and ESG (Environmental, Social, and Governance) Risks (21st Century): The growing emphasis on sustainability and responsible business practices has resulted in heightened awareness of ESG risks. Organizations are increasingly integrating ESG factors into their risk assessments and reporting to address environmental and social risks.The evolution of risk management is an ongoing process, shaped by the emergence of new risks and the adaptability of organizations to the changing global business environment, technological advancements, and societal expectations. Today, risk management is recognized as an integral component of strategic decision-making, closely aligned with an organization's long-term sustainability and resilience.

Understanding Risk Management Maturity Models:

Before delving into the concepts of continuous innovation and adaptation, it is crucial to grasp the fundamental components of a Risk Management Maturity Model. Typically, these models encompass a range of maturity levels, often spanning from “Ad-hoc” or “Initial” to "Optimized" or "Advanced." Each level signifies a distinct stage of risk management maturity. Organizations evaluate their current maturity level and utilize the model as a guide to pinpoint areas requiring enhancement.

The key elements of a typical RM Maturity Model include:

Risk Governance: Evaluating how effectively risk management is integrated into the organization's governance structure and decision-making processes.

Risk Identification: Assessing the organization's ability to identify and evaluate both internal and external risks.

Risk Assessment: Measuring the depth and sophistication of risk assessment methodologies and tools.

Risk Mitigation and Control: Examining the organization's capabilities in implementing risk mitigation strategies and controls.

Monitoring and Reporting: Evaluating how efficiently an organization tracks risk-related data and communicates it to pertinent stakeholders.

Continuous Improvement: Focusing on the organization's dedication to perpetual learning and enhancement of risk management practices.

Continuous Innovation in Risk Management:- Innovating within the realm of risk management extends beyond adopting cutting-edge technologies; it also encompasses innovative approaches to addressing risks. Here are some key considerations for fostering continuous innovation in risk management:

Nurturing a Risk-Aware Culture: Innovation often begins with a cultural shift. Organizations should cultivate a culture where risk management is not perceived as an impediment but as a vital component of decision-making. Employees should be encouraged to identify and report risks, with open channels for communication.

Leveraging Technology: Modern risk management relies heavily on technology. Innovations such as artificial intelligence, machine learning, and data analytics enable organizations to identify and assess risks more effectively. These technologies can also enhance predictive capabilities, allowing organizations to anticipate and mitigate risks before they escalate.

Data-Driven Decision-Making: Innovations in data collection, analysis, and visualization provide risk managers with valuable insights. Harnessing the power of data allows organizations to make more informed decisions and allocate resources more effectively to manage risks.

Scenario Planning: Organizations can foster innovation in risk management by engaging in scenario planning exercises. This entails envisioning various future scenarios and assessing how different risks might impact the organization. By doing so, they can proactively develop strategies to address potential challenges.

Encouraging Collaboration and Knowledge Sharing: Innovation often thrives in collaborative environments. Organizations should promote cross-functional collaboration and the sharing of knowledge among risk management professionals, enabling them to learn from one another's experiences and insights.

Adaptation in a Changing Landscape:-Adaptation is a cornerstone of continuous improvement in risk management. The business environment is in a perpetual state of flux, with new risks continually emerging. To adapt effectively, organizations must:

Monitor the External Environment: Keep a vigilant eye on industry trends, regulatory changes, geopolitical developments, and emerging risks. A proactive approach to monitoring external factors helps organizations prepare for potential disruptions.

Regularly Update Risk Assessments: Risk assessments should not remain static documents. They should be frequently updated to reflect changes in the business landscape. This includes reevaluating existing risks and identifying new ones.

Review and Adjust Risk Strategies: As new information becomes available, organizations should be prepared to modify their risk mitigation strategies. This may entail reallocating resources, adjusting risk tolerance levels, or revising contingency plans.

Stay Informed: Risk managers should stay abreast of the latest risk management practices and emerging trends. Attending conferences, participating in industry groups, and engaging in professional development are means by which they can remain at the forefront of their field.

Embrace Agility: An agile approach to risk management enables organizations to respond swiftly to changing circumstances. This entails having the flexibility to pivot when necessary and adjusting risk management processes accordingly.

Learning as a Foundational Principle:-Learning forms the core of continuous improvement in risk management maturity. It involves a commitment to garnering insights from both successes and failures and applying those lessons to enhance risk management practices. Here's how organizations can instill a culture of learning in risk management:

Post-Incident Analysis: Following a risk event or incident, conducting a comprehensive post-mortem analysis is essential. This should focus not merely on assigning blame but on comprehending the root causes and identifying areas for improvement.

Benchmarking: Comparing an organization's risk management practices to those of industry peers and best practices can highlight areas that require attention.

Benchmarking provides valuable insights into an organization's standing in terms of risk management maturity.

Training and Development: Investing in training and development programs for risk management professionals ensures that the team remains up-to-date with the latest methodologies and tools.

Feedback Mechanisms: Encouraging employees to provide feedback on the risk management process can yield valuable insights into areas that need improvement or suggestions for more effective risk mitigation strategies.

Knowledge Sharing: Establishing a system for sharing knowledge within the organization is crucial. Lessons learned from one department or project can be applied to others, averting the repetition of mistakes.

Documentation and Documentation Review: Thorough documentation of risk management processes and their outcomes is pivotal. Regularly reviewing this documentation helps identify patterns and areas for improvement.

Conclusion:-In the dynamic business environment of today, continuous innovation, adaptation, and learning are imperatives for effective risk management. Risk Management Maturity Models equip organizations with a structured framework for assessing and enhancing their risk management practices. Nonetheless, achieving and sustaining a high level of maturity is an ongoing journey. To thrive in this journey, organizations must foster a culture of continuous innovation, embrace technology, adapt to changing circumstances, and prioritize learning from both successes and failures. By doing so, they can proactively address emerging risks and position themselves for long-term success in an ever-changing world. Continuous improvement in risk management is not merely a strategy; it is an essential for organizational survival and growth. In the dynamic business environment, continuous innovation, adaptation, and learning are essential for effective risk management. Risk Management Maturity Models provide a structured foundation, but achieving and sustaining maturity is an ongoing journey. Organizations must embrace innovation, adapt to change, and prioritize learning to proactively address emerging risks and ensure long-term success in an ever-changing world. Continuous improvement in risk management is not a strategy; it is an organizational imperative for survival and growth.

****

References:

1.'Arya', Mohan Lal (2021), "An Analytical study of Flipped Learning Approach", Strad Research, vol. 8, issue 11, pp. 325-333.
2.'Arya', Mohan Lal (2023), "A Study of Impact of Modern Technologies on Society", Naagfani, vol. 13, issue 44, pp. 90-93.
3.'Arya', Mohan Lal (2023), "New Education Policy 2020: A Educational study", Jyotirveda Prasthanam, vol. 12, issue 2, pp. 89-93.
4.'Arya', Mohan Lal and Ajay Gautama (2019), "Flipped Classroom Teaching: Model and its use for Information Literacy Instruction", IJRAR, vol. 5, issue 3, pp. 925-933.
5.'Arya', Mohan Lal and Nikita Bindal (2020), "An Analytical study of Innovativeness of Innovative teaching Method for stress free Education", IJRAR, vol. 7, issue 1, pp. 102-104.
6.'Arya', Mohan Lal (2020), "Role of Emerging Technologies and ICYs in Teaching Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 10, issue 38, pp. 108-111.
7.'Arya', Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "Artificial Intelligence (AI) and Its role in Teacher education", GIS Science Journal, vol. 8, issue 10, pp. 134-139.
8.A. Seldon and O. Abidoye (2018), *The Fourth Education Revolution*, University of Buckingham Press, London, UK.
9.B. Du Boulay (2019), "Escape from the Skinner Box: the case for contemporary intelligent learning environments," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 2902–2919.
10.B. P. Woolf (2010), *A Roadmap for Education Technology (hal-00588291)*, University of Massachusetts Amherst, Amherst, MA, USA.
11.Gola, Rajkumari and 'Arya', Mohan Lal (2020), "Emerging Technologies and Teacher Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 11, issue 41, pp. 117-120.
12.I. Magnisalis, S. Demetriadis, and A. Karakostas (2011), "Adaptive and intelligent systems for collaborative learning support: a review of the field," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 4, no. 1, pp. 5–20.
13.J. Loeckx (2016), "Blurring boundaries in education: context and impact of MOOCs," *The International Review of Research in Open and Distributed Learning*, vol. 17, no. 3, pp. 92–121.
14.J. Petit, S. Roura, J. Carmona et al. (2018), "Jutge.org: characteristics and experiences," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 11, no. 3, pp. 321–333.
15.K. Ijaz, A. Bogdanovych, and T. Trescak (2017), "Virtual worlds vs books and videos in history education," *Interactive Learning Environments*, vol. 25, no. 7, pp. 904–929.
16.M. Cukurova, C. Kent, and R. Luckin (2019), "Artificial intelligence and multimodal data in the service of human decision-making: a case study in debate tutoring," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 3032–3046.
17.National Education Policy 2020, NCERT, New Delhi.
18.S. Kelly, A. M. Olney, P. Donnelly, M. Nystrand, and S. K. D'Mello (2018), "Automatically measuring question authenticity in real-world classrooms," *Educational Researcher*, vol. 47, no. 7, pp. 451–464.
19.S. Munawar, S. K. Toor, M. Aslam, and M. Hamid (2018), "Move to smart learning environment: exploratory research of challenges in computer laboratory and design intelligent virtual laboratory for eLearning technology," *Eurasia Journal of Mathematics, Science and Technology Education*, vol. 14, no. 5, pp. 1645–1662.
20.X. Ge, Y. Yin, and S. Feng (2018), "Application research of computer artificial intelligence in college student sports autonomous learning," *Kuram Ve Uygulamada Egitim Bilimleri*, vol. 18, no. 5, pp. 2143–2154.

The Synergy of Human Resource Management and Information Technology

Suchika Joshi
Research Scholar
Department of Management
Sun Rise University, Alwar, Raj.

Dr. M. C. Sharma
Assistant Professor
Department of Management
Sun Rise University, Alwar, Raj.

Abstract:-In the rapidly evolving and technology-driven world of business, the integration of Human Resource Management (HRM) and Information Technology (IT) has become essential. This article explores the symbiotic relationship between HRM and IT, demonstrating how this synergy enhances efficiency, data-driven decision-making, and employee experiences in modern organizations. HRM encompasses recruitment, training, performance management, and more, evolving from an administrative function to a strategic partner. IT, on the other hand, leverages hardware, software, networks, and data to transform operations and communication. The integration of HRM and IT revolutionizes recruitment, onboarding, performance management, and decision-making, but also presents challenges such as data security and resistance to change. Strategies for successful integration include alignment with strategic goals, change management, and collaboration between HR and IT teams. Case studies of successful integration at companies like Google, IBM, and General Electric illustrate the benefits of this collaboration. In conclusion, embracing the synergy of HRM and IT is imperative for organizations to stay competitive in the digital age, offering enhanced talent management and data-driven insights.

Key Words: HRM, IT, IBM, Google, Strategies, Policies, and Practices.

Introduction:-In today's ever-evolving and technology-driven business world, the integration of Human Resource Management (HRM) and Information Technology (IT) has become indispensable. The collaboration between these two domains has ushered in an era of enhanced efficiency, data-informed decision-making, and improved employee experiences. This article delves into the concept of Human Resource Management and Information Technology, elucidating their interconnectedness and demonstrating how organizations can harness this synergy to thrive in the modern business landscape.

Human Resource Management: An Overview:-Human Resource Management, often abbreviated as HRM, encompasses the strategies, policies, and practices employed by organizations to effectively manage their workforce. It encompasses various functions, including recruitment, selection, training, compensation, performance evaluation, and employee engagement. The central objective of HRM is to align an organization's human capital with its strategic goals, resulting in increased productivity, heightened employee satisfaction, and overall success. Human Resource Management (HRM) is a pivotal function within organizations, serving as a cornerstone in shaping an enterprise's success. HRM is the art of managing an organization's most precious resource: its people. In this article, we will delve into the foundational concepts, essential responsibilities, and evolving trends in HRM, underscoring its paramount significance in today's dynamic business landscape.

The Evolution of HRM: Human Resource Management has undergone a remarkable evolution since its inception. In its nascent stages, it was commonly referred to as "personnel management" and primarily concentrated on mundane administrative tasks such as payroll processing, benefits administration, and maintaining employee records. However, over the years, HRM has matured into a far-reaching and strategic role within organizations.

Modern HRM extends its purview beyond administrative functions. It now centers on aligning HR practices with an organization's strategic objectives, fostering a vibrant workplace culture, and ensuring that employees remain engaged and motivated. This transformation has elevated HRM from being a mere cost center to a strategic partner that significantly contributes to an organization's overall prosperity.

Key Responsibilities of HRM:

Recruitment and Selection: At the core of HRM lies the responsibility to attract, identify, and hire the right talent for an organization. This multifaceted task involves crafting comprehensive job descriptions, conducting rigorous interviews, and making hiring decisions that harmonize with the company's overarching goals and values.

Training and Development: HRM is entrusted with the vital task of designing and implementing training programs that augment employees' skills and knowledge. This proactive approach ensures that employees stay attuned to industry trends and offers opportunities for career advancement.

Performance Management: HRM shoulders the responsibility of setting performance expectations, conducting evaluations, and providing constructive feedback to employees. Robust performance management systems empower employees to comprehend their roles in advancing organizational objectives.

Compensation and Benefits: HR professionals meticulously design and administer compensation packages, which encompass salaries, bonuses, and an array of benefits such as health insurance, retirement plans, and various employee perks. These packages are meticulously structured to remain competitive in the job market.

Employee Relations: HRM assumes a pivotal role in mediating and resolving conflicts, both among employees and between employees and management. Cultivating a harmonious work environment is imperative, as it is inherently linked to productivity and overall employee satisfaction.

Compliance with Laws and Regulations: HR professionals diligently keep abreast of labor laws and regulations, ensuring that the organization's practices adhere to legal standards. Non-compliance can lead to legal repercussions and tarnished reputation, underscoring the importance of this responsibility.

Strategic Planning: In today's fiercely competitive business arena, HRM is expected to play an active role in strategic planning. This includes workforce planning, succession planning, and the formulation of talent management strategies that seamlessly align with the organization's long-term aspirations.

Evolving Trends in HRM:-HRM remains in a perpetual state of evolution, continually adapting to cater to the evolving needs of the workforce and the dynamic demands of the business environment. Some noteworthy trends in HRM include:

Technology Integration: HRM increasingly relies on technology for various tasks such as recruitment (via applicant tracking systems), performance management (leveraging software tools), and data analytics for informed decision-making.

Remote Work and Flexibility: The COVID-19 pandemic has propelled the adoption of remote work. HRM faces the challenge of adeptly managing a hybrid workforce, ensuring sustained productivity, and nurturing employee engagement within a virtual work environment.

Diversity, Equity, and Inclusion (DEI): Organizations are now placing heightened emphasis on DEI initiatives to create a more inclusive and diverse workplace. HRM assumes a central role in developing and implementing these initiatives to foster a culture of fairness and equality.

Employee Well-being: HRM has pivoted its focus to encompass employee well-being holistically, including physical, mental, and emotional health. Initiatives encompass areas such as work-life balance, stress management, and employee assistance programs.

Data-Driven Decision-Making: HRM increasingly harnesses the power of data analytics to inform its decisions. Predictive analytics, in particular, aids in identifying trends, enhancing employee retention strategies, and optimizing recruitment efforts.

Agile HR: Inspired by agile methodologies in project management, Agile HR adopts a flexible approach that enables HRM to swiftly adapt to shifting business needs and evolving employee expectations.

Human Resource Management is the lifeblood of any organization, a dynamic and indispensable function. Its evolution from a purely transactional role to that of a strategic partner underscores its burgeoning importance in today's corporate landscape. HRM professionals are no longer confined to managing administrative duties; they are instrumental in shaping an organization's ethos, nurturing employee engagement, and facilitating the attainment of strategic objectives. As HRM continues to pivot in response to emerging trends and technology, it will play an even more pivotal role in attracting, retaining, and empowering top-tier talent. Furthermore, it will serve as the driving force behind the cultivation of diversity and inclusion, laying the foundation for enduring organizational success. In an era where human capital stands as a paramount competitive advantage, proficient HRM remains the linchpin for an organization's sustained prosperity.

Information Technology: An Overview:-Information Technology, or IT, refers to the utilization of computer systems, software, and telecommunications equipment to store, retrieve, transmit, and manipulate data for various business processes. IT plays a pivotal role in automating tasks, streamlining operations, enhancing communication, and providing valuable insights through data analysis. In today's digital age, IT is at the core of virtually every organization's operations, enabling informed decision-making and fostering innovation. Information Technology (IT) serves as the backbone of the modern world, fundamentally altering the way we live, work, and communicate. From the tiniest handheld devices to colossal data centers, IT plays an indispensable role in our daily lives. This article provides an in-depth overview of information technology, its integral components, and its profound impact on society.

Understanding Information Technology:

Information Technology, often abbreviated as IT, encompasses the utilization of computers, software, networks, and electronic systems for storing, retrieving, transmitting, and manipulating data. This multifaceted field spans a wide range of technologies and practices, all geared towards efficiently managing and processing information. It is a dynamic and continually evolving domain.

The Core Components of Information Technology:

Hardware: Hardware constitutes the physical elements of IT systems, encompassing computers, servers, storage devices, and networking equipment. These tangible assets collectively form the IT infrastructure upon which digital operations depend.

Software: Software encompasses the diverse array of programs, applications, and operating systems that run on hardware. It ranges from word processing and web browsing software to sophisticated data analytics tools and artificial intelligence algorithms.

Networks: Networks facilitate the seamless transfer of data between devices and systems. Local Area Networks (LANs), Wide Area Networks (WANs), and the global Internet serve as prime examples of network types that enable communication and data sharing.

Data: Data is the lifeblood of IT. It can take the form of structured data (e.g., databases) or unstructured data (e.g., text documents or multimedia files). Effective data management is paramount for organizations to make informed decisions.

People: The human component of IT consists of IT professionals who design, develop, maintain, and secure IT systems. Their expertise is critical in ensuring the reliability and security of information technology.

Procedures: Procedures and protocols govern the use and maintenance of IT systems. These encompass best practices for data backup, cybersecurity, disaster recovery, and other critical aspects of IT management.

The Impact of Information Technology:

Communication: IT has revolutionized communication, enabling real-time global connectivity through tools such as email, instant messaging, and video conferencing. Social media platforms have redefined interpersonal interactions and information sharing.

Business and Commerce: IT has ushered in a new era of commerce, facilitating e-commerce platforms, online banking, and digital payment systems. Businesses leverage IT for inventory management, customer relationship management (CRM), and data analytics to gain a competitive edge.

Healthcare: In healthcare, IT plays a pivotal role, from electronic health records (EHRs) to telemedicine. It enhances patient care, streamlines operations, and empowers research and data-driven decision-making.

Education: IT has transformed education by making online learning and resources widely accessible. Virtual classrooms, digital textbooks, and educational software offer new avenues for learning.

Entertainment: The entertainment industry heavily relies on IT for content production, distribution, and delivery. Streaming services, video games, and digital art creation represent prime examples.

Research and Development: Scientific research and innovation benefit immensely from IT's computational power. Complex simulations, data analysis, and collaborative research thrive on advanced IT systems.

Challenges and Concerns: While IT offers numerous benefits, it is not without challenges and concerns:

Cybersecurity: The increasing digitization of data and processes has led to heightened cybersecurity threats. Safeguarding sensitive information from cyberattacks is an ongoing challenge.

Privacy: The collection and storage of vast amounts of personal data raise concerns about individual privacy. Regulations such as GDPR aim to safeguard individuals' data rights.

Digital Divide: Not everyone enjoys equal access to IT resources, leading to a digital divide that can exacerbate societal inequalities.

Environmental Impact: The substantial energy consumption of data centers and electronic waste disposal are pressing environmental concerns associated with IT.

Information Technology stands as a dynamic and ever-evolving field that has reshaped society in profound ways. Its components, including hardware, software, networks, data, people, and procedures, collaboratively drive innovation and change. As IT continues to advance, it will undeniably shape the future in ways that hold both promise and challenges for individuals, businesses, and societies at large.

The Intersection of HRM and IT:

The integration of HRM and IT signifies a transformative shift in how organizations manage their workforce. This synergy manifests across several critical domains:

Recruitment and Talent Acquisition: IT has revolutionized the recruitment process, rendering it more efficient, data-centric, and expeditious. HR professionals leverage applicant tracking systems (ATS) to sift through resumes, conduct video interviews, and even employ AI and machine learning algorithms to identify optimal candidates. This not only saves time but also enhances the quality of new hires.

Employee Onboarding and Training: HRM benefits from IT by streamlining onboarding procedures through web-based portals, e-learning platforms, and virtual training modules. This ensures that new hires can swiftly adapt to their roles and access pertinent training materials when needed.

Performance Management and Feedback: IT tools enable continuous performance monitoring and feedback mechanisms. Managers utilize software to establish

goals, track progress, and offer regular feedback to employees. These data-driven insights facilitate more objective performance evaluations and foster discussions on career development.

Payroll and Compensation Management: IT systems simplify payroll processing and compensation administration. Automated payroll software accurately computes salaries, taxes, and benefits, mitigating the risk of errors and ensuring adherence to legal regulations.

Employee Engagement and Satisfaction: HRM utilizes IT to boost employee engagement and satisfaction. Employee engagement surveys, communication platforms, and collaboration tools contribute to a positive work environment and cultivate stronger employee-employer relationships.

Data Analytics and Decision-Making: One of the most significant advantages of the HRM-IT partnership lies in the capacity to collect and analyze HR-related data. HR analytics tools offer insights into workforce trends, attrition rates, training requirements, and more. These insights empower HR professionals and organizational leaders to make informed decisions.

HR Metrics and KPIs: IT empowers the measurement of key HR metrics and Key Performance Indicators (KPIs), including turnover rates, time-to-fill vacancies, and employee productivity. These metrics furnish a quantitative perspective on HR's influence on the organization's bottom line.

Challenges in Integrating HRM and IT:-Despite the manifold advantages, the integration of HRM and IT presents certain challenges. Common hurdles organizations may encounter include:

Data Security and Privacy: Managing sensitive HR data necessitates robust cybersecurity measures to safeguard employee information against data breaches and cyber threats.

Resistance to Change: Employees and HR professionals may exhibit reluctance towards adopting new IT systems or processes due to apprehensions of job displacement or increased workloads during the transition.

Cost and Resource Allocation: The implementation of IT solutions can be financially burdensome and resource-intensive, especially for small and medium-sized enterprises (SMEs).

Skills Gap: HR teams may require training to effectively utilize new IT tools and platforms, bridging the skills gap between HR and IT professionals.

Integration Challenges:- Integrating diverse HR and IT systems can be intricate, necessitating meticulous planning and execution to ensure seamless data flow.

Strategies for Successful Integration:-To fully exploit the potential of HRM and IT integration, organizations can adopt several strategies:

Alignment with Strategic Goals: Ensure that HRM-IT initiatives align with the organization's strategic objectives, ensuring that technology investments contribute to the overall mission and vision.

Change Management: Implement robust change management strategies to address employee resistance and cultivate a culture of innovation and adaptability.

Data Governance: Institute clear data governance policies and practices to protect employee data and adhere to data protection regulations.

Invest in Training: Allocate resources to training and development programs to equip HR professionals with the requisite IT skills and knowledge.

Collaboration between HR and IT Teams: Foster collaboration between HR and IT teams to facilitate the seamless integration of technology solutions.

Continuous Improvement: Regularly evaluate and enhance HRM-IT processes to stay abreast of evolving technologies and organizational requirements.

Case Studies: Success Stories:-Numerous organizations have successfully integrated HRM and IT, yielding remarkable outcomes. Here are a few illustrative examples:

Google: Google's HR department, known as People Operations (People Ops), extensively employs data analytics to optimize HR processes. They conduct surveys, analyze feedback, and employ algorithms to detect potential retention issues. This data-driven approach has contributed to Google's ability to maintain a highly engaged and motivated workforce.

IBM: IBM employs AI-powered chatbots for its HR service desk, offering employees rapid and efficient solutions to HR-related queries. This has significantly diminished response times and enhanced employee satisfaction.

General Electric (GE): GE employs data analytics to identify skill gaps among its workforce and offers targeted training programs to address these deficiencies. This proactive approach has led to a more skilled and adaptable workforce.

Conclusion:-The integration of Human Resource Management and Information Technology is not merely an option; it is a necessity in today's digital era. Organizations that embrace this synergy attain a competitive edge by utilizing technology to attract, cultivate, and retain top talent, all while making data-informed decisions. Though challenges may arise during the integration process, the benefits far outweigh the obstacles, as evidenced by the success stories of leading enterprises. By

aligning HRM and IT with their strategic goals and nurturing a culture of collaboration and innovation, organizations can confidently navigate the ever-evolving business landscape with efficiency and efficacy.

****

References:

1. 'Arya', Mohan Lal (2021), "An Analytical study of Flipped Learning Approach", Strad Research, vol. 8, issue 11, pp. 325-333.
2. 'Arya', Mohan Lal (2023), "A Study of Impact of Modern Technologies on Society", Naagfani, vol. 13, issue 44, pp. 90-93.
3. 'Arya', Mohan Lal (2023), "New Education Policy 2020: A Educational study", Jyotirveda Prasthanam, vol. 12, issue 2, pp. 89-93.
4. 'Arya', Mohan Lal and Ajay Gautama (2019), "Flipped Classroom Teaching: Model and its use for Information Literacy Instruction", IJRAR, vol. 5, issue 3, pp. 925-933.
5. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Bindal (2020), "An Analytical study of Innovativeness of Innovative teaching Method for stress free Education", IJRAR, vol. 7, issue 1, pp. 102-104.
6. 'Arya', Mohan Lal (2020), "Role of Emerging Technologies and ICYs in Teaching Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 10, issue 38, pp. 108-111.
7. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "Artificial Intelligence (AI) and Its role in Teacher education", GIS Science Journal, vol. 8, issue 10, pp. 134-139.
8. A. Seldon and O. Abidoye (2018), *The Fourth Education Revolution*, University of Buckingham Press, London, UK.
9. B. Du Boulay (2019), "Escape from the Skinner Box: the case for contemporary intelligent learning environments," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 2902–2919.
10. B. P. Woolf (2010), *A Roadmap for Education Technology (hal-00588291)*, University of Massachusetts Amherst, Amherst, MA, USA.
11. Gola, Rajkumari and 'Arya', Mohan Lal (2020), "Emerging Technologies and Teacher Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 11, issue 41, pp. 117-120.
12. I. Magnisalis, S. Demetriadis, and A. Karakostas "Adaptive and intelligent systems for collaborative learning support: a review of the field," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 4, no. 1, pp. 5–20.
13. J. Loeckx (2016), "Blurring boundaries in education: context and impact of MOOCs," *The International Review of Research in Open and Distributed Learning*, vol. 17, no. 3, pp. 92–121.
14. J. Petit, S. Roura, J. Carmona et al. (2018), "Jutge.org: characteristics and experiences," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 11, no. 3, pp. 321–333.
15. K. Ijaz, A. Bogdanovych, and T. Trescak (2017), "Virtual worlds vs books and videos in history education," *Interactive Learning Environments*, vol. 25, no. 7, pp. 904–929.
16. M. Cukurova, C. Kent, and R. Luckin (2019), "Artificial intelligence and multimodal data in the service of human decision-making: a case study in debate tutoring," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 3032–3046.
17. National Education Policy 2020, NCERT, New Delhi.
18. S. Kelly, A. M. Olney, P. Donnelly, M. Nystrand, and S. K. D'Mello (2018), "Automatically measuring question authenticity in real-world classrooms," *Educational Researcher*, vol. 47, no. 7, pp. 451–464.
19. S. Munawar, S. K. Toor, M. Aslam, and M. Hamid (2018), "Move to smart learning environment: exploratory research of challenges in computer laboratory and design intelligent virtual laboratory for eLearning technology," *Eurasia Journal of Mathematics, Science and Technology Education*, vol. 14, no. 5, pp. 1645–1662.
20. X. Ge, Y. Yin, and S. Feng (2018), "Application research of computer artificial intelligence in college student sports autonomous learning," *Kuram Ve Uygulamada Egitim Bilimleri*, vol. 18, no. 5, pp. 2143–2154.

इक्कीसवीं सदी की कविताओं में दलित-विमर्श

डॉ.सजिना.पी.एस
सह आचार्या, हिंदी विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम, केरल मो.7025527422

सारांश:- दलित साहित्य एक प्रकार का विरोध आक्रोश और क्रोध का साहित्य है, इसमें बहिष्कृत समाज कि पीड़ा, दंश, और सदियों से जहालत भरी जिन्दगी जीने को विवश समाज का का चित्रण है। सामाजिक विषमताओं से पीड़ित और हाशिए पर रखे जाने के बाद दलित समाज,उस रूढ़ बंधन से निकलने की कोशिश में है, दलित समाज के छटपटाहट को.उसके द्वारा किये गए संघर्ष को, हम दलित साहित्य में पाते हैं। इस प्रकार के संघर्ष में समता,स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय के लिए संघर्ष दिखाई देता है। 'दलित कविता में समाज में व्याप्त वर्णव्यवस्था की खाई को देखकर दिल दहल उठता है,वास्तव में इस साहित्य में शोषण की बर्फ़ को पिघलाकर नदी बहा देने वाली गर्मी है, और वर्ण और वर्ग की नींव को ध्वस्त कर एक समतामूलक समाज की नई इमारत खड़ी करने वाली वास्तुकला है।'[1]

प्रस्तावना :- दलित उन्हें कहा जाता है जिन्हें सवर्णों द्वारा अस्पृश्य माना जाता रहा है। हमारे इस समाज में उसकी उपस्थिति सबसे अलग है। कुछ वर्ग के लोग अपनी उन्नति के लिए उनका खून चूस लेते हैं और उन्हें विकसित होने का अवसर नहीं देते।लंबे समय तक उपेक्षित दलित समाज की चीख, दलित कविता की खासियत है। दलित कवियों ने अपनी पीड़ा को खुद अभिव्यक्त किया है। जाति एवं अस्पृश्यता भेद - भाव, असमानता और शोषण के खिलाफ़ आवाज उठाते रहे हैं। वास्तव में ये विमर्श हम संत रैदास जी के साहित्य में भी पाते हैं रविदास जी हिंदी के प्रथम दलित कवि माने जाते हैं. आधुनिक युग के दलित कवियों में पहला नाम आता है हीरा डोम का और हीरा डोम के साथ-साथ स्वामी अछूतानंद का नाम लिया जाता हैं। 1914 में सरस्वती पत्रिका में हीरा डोम की एक कविता प्रकाशित हुई थी उसी को पहली दलित कविता माना गया है और उसका शीर्षक है 'अछूत की शिकायत'। इसके बाद बिहारीलाल नामक कवि दलित विमर्श को लेकर आगे आते हैं,उनका काव्य संग्रह 'चमार हूँ मैं' (1975) इससे पहले भी बिहारीलाल का एक काव्य संग्रह आ चुका था उसका का नाम था 'अछूतों का पैगम्बर'(1946) इसके बाद आते हैं ओमप्रकाश वाल्मीकि। सदियों का संताप '(1989) , 'बस बहुत हो चुका', 'अब और नहीं'(2009) आदि इनके काव्य संग्रह है। इस दौर में आने वाले मलखान सिंह की कविता है 'सुनो ब्राह्मण '(1995) । अधिकांश आदिवासियों की समस्याओं को लेकर लिखी गई निर्मला पुतुल का काव्य संग्रह है 'अपने घर की तलाश' (2004) और आते हैं सूरजपाल चौहान की कविता ' क्यों विश्वास करूँ '(2004) , मनोज सोनकर की कविता 'गजल गंध '(2001) आदि।

इक्कीसवीं शताब्दी के दौर मे दलितों के जीवन परिवर्तन को लेकर कविताएं लिखी जा रही है।इन कविताओं मे दलितों का संघर्ष, मुक्ति आंदोलन, अज्ञान दरिद्रता, सामाजिक गुलामी से मुक्ति, अछूतों के लिए आजादी, दलितों की पीड़ा, और व्यथा आदि को महत्व दिया जा रहा है।मोहनदास नैमिशराय, रमणिका गुप्ता, मलखान सिंह ,ओमप्रकाश वाल्मीकि, प्रेम कपाडिया, जयप्रकाश, रूप नारायण सोनकर आदि कवियों द्वारा हिंदी कविता को आगे बढ़ाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न दलित पत्रिकाओं में दलित अस्मिता, युद्धरत आम आदमी आदि पत्रिकाओं में दलित विमर्श की चर्चा जोर-शोर से हो रही है।जाति के प्रति दलितों की घृणा को जयप्रकाश लीलावन की कविता में देखा जा

सकता है -

"वर्ण धर्म की वैचारिकी के
सुडौल उरेजों का/जहरीला दूध पीकर
विखंडन के खप्पर भरने वाली डायन है
हमारे देश की जाती प्रथा ।"[2]

आज के दौर में भी जातीयता के नाम पर अन्याय और शोषण हो रहा है। अपनी कविता में कवियों ने केवल प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति को ही महत्व नहीं दिया है बल्कि उन्होंने समय के अनुरूप आम आदमी की स्थिति को भी परखने का पूरा-पूरा प्रयास किया हैं।आज के कवियों द्वारा हिंदी कविता में स्त्री की संवेदना, दलितों पर किए गए अत्याचार एवं आदिवासी जनजीवन को महत्व दिया जा रहा है।

सत्य है कि काल एवं समय के अनुरूप समकालीन काव्य लेखन के संदर्भ भी परिवर्तित हो रहे हैं 1 दलित चेतना की दृष्टि से मनोज सोनकर, रमणिका गुप्ता, मलखान सिंह ,ओम प्रकाश वाल्मीकि आदि कवियों की कविताएं महत्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। इन कवियों ने सदियों से भोंगे हुए दलितों के अनुभवों को व्यक्त किया है।मनोज सोनकर का 'शोषितनामा' तथा शबरी संबोध में तत्कालीन दलितों के शोषण का चित्रण किया है। दलित सर्वहारा शोषित है। शबरी संबोध संग्रह में शबरी नाम का पात्र शोषित एवं सर्वहारा का प्रतिनिधित्व करता है। कवि सीता जैसे पौराणिक पात्र के माध्यम से आधुनिक नारी की अस्मिता को व्यक्त करते हैं।आज भी सीता जैसी अनेक नारियों को अपने पति के संशय एवं सामाजिक व्यवस्था में अपने जीवन की अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है।उस समय शबरी जैसे पात्रों के आवाज को दबाया जाता था, लेकिन आज समय के अनुरूप यह स्थिति बदल रही है। इसलिए आज दलित नव कवियों ने दलित नारियों की स्थिति को परिवर्तन के रूप में देखा है। "घृणा" नामक कविता में सी. बी. भारती लिखती है, -

"अनवरत घृणा और तुम्हारी इसी घृणा ने
किया है हमें कमजोर, जिससे हम होते रहे बार-बार गुलाम
लड़ भी न पाये थे देश के लिये कभी
न एक होकर हम"।

'आक्रोश' नामक कविता में सी. बी. भारती लिखती है,

"तुम अपनी माँ की लोरियाँ सुनकर ही सो पाते थे,
उस समय मैं भूखा पेट रहकर
भी खाता था केवल झिड़किया"[13]

प्राचीन काल से ही उच्च वर्गीय समाज द्वारा दलित एवं पिछड़े हुए समाज का शोषण होता आया है. मराठी एवं हिंदी के कुछ कवियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से छुआ-छूत एवं अस्पृश्यता की जड़ों को उखाड़ने का प्रयास किया है। प्राचीन कवियों ने अपने काव्य में जातीयता एवं अस्पृश्यता को मिटाने के लिए समाज में जनजागृति का कार्य किया। मराठी में तुकाराम,नामदेव,एकनाथ समर्थ, संत कवि मराठी दलित साहित्य के आदर्श माने जाते हैं।उसी प्रकार हिंदी मे कबीर, मीरा भाई ,रैदास आदि भक्त कवि हिंदी दलित साहित्य के प्रेरणा स्रोत बने हैं। इन कवियों ने। तत्कालीन सामाजिक। समस्याओं को उठाया है.सभी भाषाओं में आजकल दलित साहित्य लिखा जा रहा है। हिंदी में भी गंभीर दलित साहित्य का लेखन हो रहा है। हीरा डोम अपनी कविता अछूत की शिकायत में भगवान से शिकायत करते हैं कि आप प्रह्लाद, गजराज, विभीषण और द्रौपदी की रक्षा में तत्परता दिखाते हैं। हमने ऐसा क्या अपराध किया है कि हमारी विनती तनिक नहीं सुनते हो?

"हमनी के रीती दिन दुखवा भोगत बानी।
हमनी के सहेब से मिली सुनाइबी
हमनी के दुख भगवनओं ने देख ताजे ,
हमनी के कबले कलेसवा उझाइबि "

दलित काव्य परंपरा के अंतर्गत अनेक कवियों ने अपनी रचना से दलित कविता साहित्य को समर्थन किया है।दलित कविता जाति विशेष से उठकर अपने सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती नजर आती है।भारत की सभी भाषाओं में दलित जीवन की पीड़ा का दंश एक सा है, वैचारिक जमीन एक है,परिप्रेक्ष्य एक है। दलित कविता अपनी यातनाओं के अतीत के साथ अपने समसामयिक जीवन और परिवेश के साथ गहराई से जुड़ी हुई है. जिससे उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है। हिन्दी दलित कविता आंदोलन चेतना, सदियों के अन्याय, अत्याचार और शोषण का इतिहास है।

हिन्दी साहित्य में दलित चेतना की दृष्टि से ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य महत्वपूर्ण माना जाता है। उनकी प्रमुख कृतियों में 'सदियों का संताप' 'जूठन' 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' ,'आँधी' उल्लेखनीय है।ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविता के संदर्भ में डॉक्टर रजतरानी मीनू का कहना है कि -"कवि वाल्मीकि की कविता स्वांत: सुखाय नहीं अपितु जन हिताय की व्यापक सामाजिक जीवन परिवेश की परिचायक है। ये यथार्थ दुखों, संतापों के प्रामाणिक और खुले दस्तावेज भी है।" कवि वाल्मीकि ने अपनी रचनाओं के द्वारा दलित साहित्य को और समर्थ एवं प्रभावी बनाया है। उनका कहना है कि अज़ादी मिलने के बाद भी दलितों की स्थिती में कोई खास सुधार नहीं हुआ है।इस संदर्भ में डा.मैनेजर पांडेय का कहना है कि-"ठाकुर का कुआँ, कुआँ नहीं बल्कि सारा हिंदू समाज है जिसमें अछूतों को डूब मरने की तो सुविधा है पीने के लिए पानी लेने की नहीं।"

दलित वेदना के भुक्त भोगी रहे हैं, कवि कर्दम जी और यही अनुभूति उनकी लेखनी का प्राण तत्व है। कमियों और अभावों से भरी दर्द जिंदगी को उन्होंने अपनी 'लालटेन' नामक लंबी कविता में कलम बद्ध किया है। वे कहते हैं कि - आर्थिक तंगी के कारण कभी-कभी हफ्ते तक भुनी सब्जी भी हमारे घर नहीं बनती थी, प्राय: नमक से चावल या उबले हुए आलू नमक के साथ हम लोग खाते थे. हम से जो बचता माँ वह खाती थी. यानी हम सब की जूठन से ही वह अपना पेट भरती थी। कभी-कभी भूंखी रह जाती थी।"दलित को कदम-कदम पर सर्वणों का अमानवीय व्यवहार सहन करना पड़ता है। वे चाहकर भी उसके खिलाफ आवाज नहीं उठा सकते।

निष्कर्ष :- इस प्रकार आज दलित कविता अपने अधिकारों एवं न्याय के प्रति प्रतिबद्ध है। समय आने पर वह शोषित वर्ग को आवाहन भी करते हैं। वैसे तो समकालीन दलित कविता में दलित एवं बहुजनों के जीवन के विभिन्न संदर्भों का महत्व रहा है।आज क नव दलित कवियों ने दलितों के शोषण को मिटाने के लिए संघर्ष एवं नए परिवर्तन को अपनी कविता में स्थान दिया है।सभी दलित कवियों ने समाज में स्थित वर्णव्यवस्था,वर्गभेद जातीयता, ऊँच-नीच का विरोध करके दलितों के जीवन के लिए संघर्ष करने की नई चेतना उत्पन्न की है। इसलिए आज सभी भारतीय साहित्य के अंतर्गत दलित एवं आदिवासी विमर्श को लेकर अधिक लेखन किया जा रहा है।

****

संदर्भ सूची :-

1.डॉ.रमेशचंद्र चतुर्वेदी, बींसवीं सदी की हिंदी दलित कविता, प्राक्कथन
2.जयप्रकाश लीलवान,अब हमें ही चलना है, पृष्ठ 55
3.दलित साहित्य ,1999; संपादक: जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ 279
4.डॉक्टर अंबेडकर और दलित चेतना -रघुबीर सिंह
5.हिंदी दलित कविता विचार और विमर्श, डॉ खन्ना प्रसाद अमीन

स्त्री जीवन की समस्याओं का दस्तावेज 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास

डॉ. सुशील कुमार
अस्थायी प्रवक्ता (हिन्दी)
सरकारी महाविद्यालय बसोहली, कठुआ जम्मू - 184201
मो. 9596654568

स्त्री लेखन ने 21वीं सदी के इस दौर में अपनी एक खास पहचान बना ली है। विविध भाषाओं में स्त्री लेखन लगातार भरपूर हो रहा है। हिंदी साहित्य में भी स्त्री विमर्श असंख्य लेखिकायों ने लिखा है और लगातार लिख रही हैं। स्त्री से तो हम भली भांति परिचित हैं। स्त्री यानी महिला या नारी। "विमर्श का अर्थ है - जीवंत बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट पुलट कर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना। अलबत्ता प्रयास यही रहे कि निष्कर्ष अंतिम निर्णय की तरह थोपे न जाएं, वरन उन्हें 'ग्रो' करने के लिए भरपूर स्पेस और समय दिया जाता रहे।"[1] इस प्रकार स्त्री विमर्श से तात्पर्य हुआ कि स्त्री को चारों कोणों या प्रत्येक दृष्टि से देखना और उसकी स्थिति पर विचार करना। इसके अतिरिक्त स्त्री विमर्श नारी मुक्ति के लिए उठा ऐसा आंदोलन है जो पितृसत्ता द्वारा स्त्री को दोयम दर्जे की बनाने का विरोध करता है। "मुक्ति से तात्पर्य पुरुष हो जाना या पुरुषोचित गुणों का स्वीकार कदापि नहीं है। स्त्री की अपनी प्राकृतिक विशेषताएं हैं। परंतु दोहरे सामाजिक मानदण्डों ने जो शर्मनाक स्थिति पैदा की है, वह स्त्री को मात्र 'स्त्रीत्व' को बंधन में बांधती है।"[2] उसी दोहरे मापदंड और बंधन से मुक्त कराकर उसे मानव समझने का आग्रह करता है स्त्री विमर्श। इसके साथ ही यह विमर्श नारी को मानव बनाए रखने की पहल करते हुए उसे प्रत्येक दृष्टि से स्वतंत्र और सशक्त करने का हितैषी भी है। यह एक आंदोलन है जो नारी को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि हर क्षेत्र में सम्मान व समान अधिकार देने की बात करता है। इसके अलावा यह विमर्श उसे धार्मिक कर्मकांडों से मुक्त करा, केवल और केवल उसे अन्य मनुष्यों की तरह मनुष्य के रूप में उसकी अस्मिता को पहचानने की बात करता है। इस बात दे इनकार नहीं किया जा सकता कि स्त्री विमर्श ने स्त्री को पिछले कई वर्षों से एक बड़े पैमाने सशक्त किया है। उसे आर्थिक स्तर पर स्वतंत्र करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हर क्षेत्र में उसकी भूमिका पहले से अधिक विश्वसनीय है। लेकिन इन सबके बावजूद भी स्त्री का शोषण, उसपर किये जा रहे अत्याचार और उसका दोहन वर्तमान में भी आधुनिक तरीकों से लगातार जारी है। इन्हीं पर विचार करना 21वीं सदी में स्त्री विमर्श के समक्ष एक नई चुनौती है। इस प्रकार कुलमिलाकर कहें तो "स्त्रीत्ववादी विमर्श का सरोकार जीवन एवं साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है"[3] और यह मुक्ति किस प्रकार की है इसे पीछे जाहिर किया जा चुका है।

स्त्री विमर्श पर असंख्य लेखिकायें वर्तमान ने लिख रहीं है, इन्हीं में से ममता कालिया अग्रणी हस्ताक्षर के रूप में हमारे समक्ष हिंदी साहित्य में नजर आती हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रमुख एवम चर्चित लेखिका ममता कालिया ने कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध, पत्रकारिता, उपन्यास आदि सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी प्रतिभा को दर्शाया है। सन 2017 में व्यास सम्मान से पुरस्कृत ममता कालिया का 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास स्त्री विमर्श पर लिखित उनकी एक अनुपम कृति है। उपन्यास में नारी सम्बन्धी समस्याओं का उल्लेख करते हुए नारी शक्ति की भावना पात्रों में देखने को मिलती है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से नारी जीवन की तीन पीढ़ियों के संघर्षपूर्ण वर्णन किया है। लेखिका ने स्त्री विमर्श के विविध पहलुओं को इस उपन्यास में उजागर किया है। इनमें सर्वप्रथम उन्होंने उपन्यास में पीढ़ीगत संघर्ष को दिखाया है जिसमें हर पीढ़ी की औरतें अपने जीवन की प्रत्येक कठिनाइयों का सामना करती हुई संघर्षरत हैं। वह कुछ समय के लिए टूटती जरूर हैं परंतु अंत में अपनी अस्मिता की रक्षा स्वयं ही करती हैं। उपन्यास में विद्यावती, रामो, लाला नत्थीमल आदि पहली पीढ़ी के पात्र हैं। लीला, इंदु, कुंती, भगवती, कविमोहन, मन्नालाल, आदि पात्र दूसरी पीढ़ी को दर्शाते हैं। प्रतिभा, मनीषा, बिल्लू, सरोजिनी, आदि युवा पीढ़ी व नई सोच वाले युवक युवतियां हैं जो अपना जीवन अपनी शर्तों पर जीना चाहते हैं। उपन्यास का हर पात्र अपने आप में अलग विशेषता लिए हुए है। विद्यावती, इंदु, लीला, कुहू, प्रतिभा, मनीषा, आदि नारी पात्रों में जीवन संघर्ष की भावना नज़र आती है। वह जीवन में हार नहीं मानती हैं और लगातार संघर्ष में जीवन जीती हैं। इसी संघर्ष की भावना के कारण स्त्री विमर्श को इस उपन्यास में जगह मिलती है। उपन्यास में नारी की समस्याओं में लैंगिक भेदभाव, कन्या भ्रूण हत्या, नारी द्वारा नारी का शोषण, अनमेल विवाह, बाल विवाह, पितृसत्तात्मक दृष्टि आदि को विविध रूपों में दिखाया है।

समाज में पारिवारिक रिश्ते, एवं रक्त संबंधों का महत्व समाप्त हो रहा है। वर्तमान समय में ऐसी ही समस्याएं हैं जिनका पूर्ण समाधान नहीं हो पा रहा है। कहने को तो कन्या-भ्रूम हत्या एक जघन्य अपराध है लेकिन समाज में आज भी ये अपराध निसंकोच किया जा रहा है। एक और कन्याओं को देवी का दर्जा देकर नवरात्रों, किसी शुभ कार्यों में उसकी पूजा की जाती है दूसरी तरफ उसी कन्या को गर्भ में ही खत्म करने के लिए अनेकों यत्न किये जाते हैं। उसे इस दुनिया में आने से पहले ही खत्म कर दिया जाता है और अगर गलती से अगर वह जन्म लेकर इस संसार में आ भी जाये तो जन्म देने वाली मां और बच्ची दोनों के साथ मानसिक स्तर पर अमानवीय व्यवहार किया जाता है। एक ओर भारत को जनसंख्या लगातार बढ़ रही है तो दूसरी ओर लड़कियों की संख्या दिन प्रतिदिन घटती जा रही है। इसी कन्या-भ्रूण हत्या की समस्या को उपन्यास में लेखिका ने चित्रित किया है। विद्यावती ने दो बेटियों को जन्म दिया, इससे उसका पति सेठ नत्थीमल बहुत क्रोधित रहता है। तीसरी बार जब वह फिर गर्भवती हुई तो उसके रंग ढंग देखकर नत्थीमल को लगा कि इस बार भी वह लड़की को ही जन्म देगी। नत्थीमल ने उसे कुनैन की पुड़िया खाने को दी, जिससे बच्चा पेट में ही मर जाए। विद्यावती को कुनैन की पुड़िया देते हुए नत्थीमल बोलता है "कुनैन है। दिन में तीन बार फंकी लगाकर पानी पी ले। पेट की सफाई हो जाएगी।"[4] परंतु विद्यावती वह नहीं खाती है, कुछ महीनों बाद उसे लड़की नहीं लड़का पैदा होता है। इस पर लेखिका कहती है "सलोनी सूरतवाला शिशु साक्षात मृत्युंजय था। नत्थीमल को कोई अपराधबोध नहीं हुआ कि इस गर्भ को मिटाने के लिए उन्होंने कैसे कैसे यत्न किये।"[5] लेकिन अगर यत्न भी सफल न होते और फिर से लड़की पैदा हो जाती तो उनकी खुशी मातम में बदल गयी होती। ऐसा पहले तो होता ही था लेकिन वर्तमान में भी यही मानसिकता जस की तस बनी हुई है

जिसे आज भी देखा जा सकता है । इसी के कारण रिश्तों में तनातनी और बिखराव आ जाता है और सम्बन्ध बदल जाते हैं । इन संबंधों में स्त्री का दशा क्या होती है इसी की ओर उपन्यास ध्यान आकर्षित करता है। बेटे और बेटी में भेदभाव तो सदियों से चला आ रहा है । बेटा पैदा हो तो खुशी होती है पर बेटी पैदा हो तो दुख होता है । यही मानसिकता आज भी कायम है । बेटे को अच्छे स्कूल में पढ़ाया जाता है क्योंकि वह बुढ़ापे में मां-बाप का सहारा बनेगा वहीं दूसरी और लड़की को पराया धन कहकर उसकी पढ़ाई पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता । उसके साथ मात्र औपचारिकता जैसा व्यवहार किया जाता है । इस उपन्यास में भी इंदु के माध्यम से इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है। इंदु की पहले ही एक बेटी थी, लेकिन दूसरी बार भी जब वह बेटी को ही जन्म देती है तो सारा परिवार उससे मुंह फेर लेता है । यहां तक कि इंदु और छोटी बच्ची को अस्पताल से घर लाने के लिए परिवार का कोई सदस्य भी नहीं जाता है । उसे लाने के लिए गांव की एक बूढ़ी औरत रामो को भेजा जाता है । सेठ नत्थीमल को भी एक और पोती पाकर बहुत कष्ट होता है । जब छोटी बेटी मनीषा (मुन्नी) का जन्म हुआ, उस घटना का वर्णन लेखिका ने इन शब्दों में किया है "जिस दिन वह पैदा हुई, घर में कोई उत्सव नहीं मना, लड्डू नहीं बंटे, बधावा नहीं बजा । उल्टे घर की मनहूसियत ही बढ़ी । दादी ने चूल्हा तक नहीं जलाया... बेटे की बेटी के लिए उनके मन मे अस्वीकार भाव था।"6 आज भी अस्वीकार भाव उन घरों की दादी-नानियों में देखा जा सकता है जिनकी मानसिकता आज भी वैसी ही है । बेशक कहने को आधुनिक युग है लेकिन सोच आज भी वही पुरानी है । सास ससुर की बात तो दूर स्वयं इंदु भी दूसरी बेटी हो जाने पर दुखी होती जाती है । यह पितृसत्तात्मक दृष्टि का परिणाम है जिसके चलते स्त्री के मन में भी पुरुष जैसे भावों का संचार हो जाता है ये जानते हुए भी कि वह स्वयं भी एक बेटी है । लेखिका इंदु की मानसिक बेचैनी को व्यक्त हुई कहती हैं कि "सलोनी सी बिटिया थी, गेहुआं रंग, गुलाबी होंठ और गुलगुले हाथ पांव। हाय! यह लड़का होती तो मेरे कितने ही दुख दूर हो जाते ... एक क्षण तो उसका मन हुआ वह बच्ची का गला घोंट दे ।"[7] यही मानसिकता है जो बदलने की ज़रूरत है जिससे कि इस समस्या से निपटा जा सके । बेटी को बेटी समझकर नहीं एक मनुष्य समझा जाए बेटे की तरह । अस्पताल से घर आने पर इंदु के साथ परिवार परायापन दिखाने लगते हैं । इंदु का कमरा बदलकर तीसरी मंज़िल पर कर दिया जाता है, जिससे उसे कमजोरी के साथ ही अन्य केई तकलीफें सहन करनी पड़ती हैं । उसकी तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता है । उसको पौष्टिक आहार की जगह रूखा सूखा खाने को दिया जाता है और बच्ची को भी वह अकेली संभालती है। इससे लेखिका इस ओर ध्यान दिलाना चाहती है कि बेशक आज नारी सशक्तिकरण, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ के नारे लग रहे हैं लेकिन इन सबके वाबजूद मानसिकता बदल नहीं रही । जबतक लोगों की मानसिकता में बदलाव नहीं आता तब तक ये भेदभाव होता रहेगा ।

समाज में बाल विवाह जैसी कुप्रथा से हर कोई परिचित है । बाल विवाह जैसी समस्या बहुत पुरानी है लेकिन ये आज भी किसी न किसी रूप में समाज में विद्यमान है ।इसे खत्म करने के लिए केई कानून बनाए गए, लेकिन ये वर्तमान में भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है । आज भी ये हमारे आसपास तथा केई राज्यों में जिसकी खबरें समाचार पत्रों में कहीं न कहीं मिल जाती है । वह लड़कियां जिनका विवाह किसी भी कारण से छोटी उम्र में हो जाता है, उन्हें केई प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियों से जूझना पड़ता है । उपन्यास में लेखिका ने विद्यावती के माध्यम से इस समस्या को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है । विद्यावती की 5 -6 साल की उम्र में शादी हो जाती है और कुछ ही समय बाद जब पति की मृत्यु हो जाती है तो उसकी मां कहती है " अरे मेरी छोटी का अभी गौना भी नहीं हुआ, कैसे उसे विधवा मानूँ ।' पास पड़ोस में खबर फैलते देर न लगी । रिश्तों की चाचियों ने उसे जबरन सफेद फ्रॉक पहना दी और समझा दिया, 'देख लाली, अब तुझे घर में रहना है, छोरों से बात नई करनी और निर्जला एकासी पर पानी नहीं छूना"[8] वह अबोध बालिका तब शायद का शादी का अर्थ भी नहीं समझती होगी और उसे विधवा होकर समाज के गले-सढ़े रीति-रिवाजों का पालन करना पड़ा। उसके बाद 14 साल की उम्र में विद्यावती का नत्थीमल के साथ पुनर्विवाह करा दिया जाता है ।

अनमेल विवाह की समस्या को भी लेखिका ने इस उपन्यास में माध्यम से दर्शाया है । यह समस्या भी पारिवारिक कलह और रिश्तों में बिखराव का बनती है । जब किसी लड़की की शादी अपने से अधेड़ उम्र के आदमी से करा दी जाती है तो उसके जीवन में मानसिक और शारीरिक अंतर होने के कारण आपस में तालमेल नहीं बैठ पाता । पति-पत्नी की उम्र में काफी अनमेल होने के कारण उनके वैवाहिक जीवन में भी कलह द्वेष का माहौल बना रहता है । लीला और मन्नालाल के जरिये इस समस्या को लेखिका ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है । नत्थीमल पैसों के लालच में अपनी बड़ी बेटी लीला की शादी 20 साल बड़े आदमी मन्नालाल से कर देता है ये जानते हुए भी कि उसकी पहले से दो शादियां हुई हैं और दो बच्चे भी हैं। इस पर लेखिका लिखती हैं " लीला की शादी सोलवें साल में छयालिस वर्षीय मन्नालाल से जब हुई तो सतघड़े के निवासियों ने छाती पीट ली, 'हाय! ऐसा कठरेज बाप हमने नाय देखै जो कच्ची कली को सिल पर दे मारे।'[9] कुछ साल बाद लीला के घर लड़का होता है और मन्नालाल बिना बताए घर छोड़कर चला जाता है। केई वर्षों तक वह घर नहीं आता । लीला अकेली तीनों बच्चों की ज़िम्मेदारी उठाती हुई ठोकरें खाने को मजबूर हो जाती है । इस बात से लेखिका इस ओर ध्यान आकर्षित कराना चाहती है कि गलती चाहे पुरूष की हो लेकिन उसका अंजाम स्त्री को ही भुगतना पड़ता है । स्त्री का जिस चीज़ में कोई हाथ न हो उसके लिए भी कोसा जाता है । यानी कि हर तरह से उसे प्रताड़ना आज के दौर में भी दी जा रही है चाहे स्त्री आर्थिक स्तर पर कितनी भी मजबूत क्यों न हो ।

आधुनिक समय मे जहां स्त्री पढ़ी लिखी होने के कारण अपनी शादी के फैसले स्वयं लेने है, क्योंकि अब वह आर्थिक रूप में सुदृढ़ है । पर केई बार परिस्थिति इसके विपरीत होती है । कभी कभी उसकी आर्थिक स्तर पर दृढ़ता ही उसके लिए परेशानी का कारण बन जाती है। वर्तमान समय भी देखा जाए तो पिता, भाई या घर के बड़ों कर दवाब के कारण लडक़ी को परिवार की बात माननी पड़ती है। यही पितृसत्तात्मक दृष्टि है जो आज भी मानसिक रूप से देखी जा सकती है । एक पिता कभी नहीं चाहेगा कि उसकी बेटी उसकी मर्जी के खिलाफ जाए या अपनी मर्जी से विवाह की इच्छा प्रकट करे जबकि लड़के के संदर्भ में ऐसा नहीं होता । यही से भेदभाव की मानसिकता का पता लग जाता है कि स्त्री आज भी कितनी स्वतंत्र है । 21वीं सदी में भी देखें तो पितृसत्ता का बोलबाला नज़र आता है। पुरुष-प्रधान समाज कभी कभी कभी इतना स्वार्थी हो जाता है कि स्वयं को अपने परिवार में कर्ता धर्ता समझने लग जाता है । सभी परिवारजनों को अपने अनुसार चलाने की कोशिश करता है खासकर स्त्री को । अगर लड़की नौकरी करना चाहती है पुरुष कहता है कि स्त्री "काम पर नहीं जाएगी। लोग क्या कहेंगे । बनिया बिरादरी में तो नाक कट जाएगी ।"[10] बिरादरी और अपनी नाक के चलते स्त्री को अपने सपनों से दूर कर दिया जाता है । इसी तरह का दूसरा उदाहरण इंदु की बड़ी के माध्यम से सामने लाया जहां उसे मॉडलिंग करने से रोका जाता है सुर उसके फैसले को गलत बताया

जाता है। उसपर अपनी मर्जी थोपी जाती है जो पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता के अनुरूप होती है। कहने का आशय यही है कि स्त्री को अपने फैसले लेने का अधिकार आज भी बहुत कम दिया जाता है जो कि आज के समय का चिंतनशील प्रश्न है। इसी की चलते कुछ लड़कियां घर छोड़कर चली जाती हैं जैसे कि इस उपन्यास की प्रतिभा केई बार ये फैसला ठीक हो सकता है लेकिन फिर भी ये सही फैसला नहीं है। असल में होना ये चाहिए कि पुरुष मानसिकता में बदलाव लाने का प्रयास किया जाये और ये प्रयास स्त्री को स्वयं ही करना पड़ेगा। उसे ये एहसास दिलाना होगा को जैसे वह खुद आज़ाद रहकर अपने सपनों को पूरा करना चाहता है वैसे ही स्त्री को भी वह आज़ादी वह घर, परिवार और समाज में दे। स्त्री पर अपनी मर्जी न थोपकर उसे उसका विकास स्वयं करने का भरपूर मौका दिया जाए। हां यदि कोई स्त्री गलत दिशा में जाने की कोशिश करे तो उसका सही मार्गदर्शन कर लेकिन उसके राह में रोड़ा न बने।

कुल मिलाकर कह सकते है कि इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री जीवन की तीन पीढ़ियों, उनकी समस्याओं को वर्तमान संदर्भ में दिखाने का भरपूर प्रयास किया है। इस प्रयास की सफलता इस बात में है कि इससे इस बात का पता चलता है स्त्री आंदोलन के इतने वर्षों बाद भी स्त्री को उसका सही स्थान व दर्जा नहीं मिल पाया है। वह किसी न किसी रूप में आज भी परतन्त्र और पुरुष मानसिकता से घिरी हुई नज़र आती है। इस उपन्यास में नारी विषयक समस्याओं को आधार बनाकर स्त्रीओं की दुख सुख भरी दास्तां को लेखिका ने अभिव्यक्ति दी है। स्त्री विमर्श के इस दौर में इस उपन्यास रूपी दुख सुख की इस दास्तां ने हिंदी साहित्य में विशेष पहचान बनाई है।

****

संदर्भ:-

1. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ - 66
2. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियां, पृष्ठ - 25
3. वही, 24
4. ममता कालिया, दुक्खम सुक्खम, (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण - 2009), पृष्ठ - 100
5. वही, पृष्ठ - 100
6. वही, पृष्ठ - 7
7. वही, पृष्ठ - 11
8. वही, पृष्ठ - 99
9. वही, पृष्ठ - 45
10. वही, पृष्ठ - 162

भाषा का वैज्ञानिक पक्ष और हिन्दी भाषा शिक्षण : एक विश्लेषण

डॉ.राजेंद्र घोडे
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय,पुणे (महाराष्ट्र)

भाषा अध्ययन के शुरुआत में अंग्रेजी के शब्द *फिलोलॉजी* का ही पर्याय माना गया 'भाषाविज्ञान'। लेकिन बाद में तमाम शोध निष्कर्षों के पश्चात फिलोलॉजी के स्थान पर *लिंग्विस्टिक* शब्द को भाषाविज्ञान के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। तत्पश्चात, भाषा के पठन-पाठन और शोध प्रक्रिया ने नई अवधारणा को जन्म दिया। शोध के उत्तरोत्तर विकास और अध्ययन ने बहुत बाद में दोनों फिलोलॉजी और लिंग्विस्टिक के सम्मिलित और स्वीकृत अर्थ यानि भाषा का विज्ञान को प्रतिष्ठापित किया जिसे पूर्ण रूप में *भाषाविज्ञान* के नाम से अभिहित किया गया। वर्तमान में यह भाषा के अध्ययन का द्योतक बन चुका है।

जब हिंदी भाषा और उसके अध्ययन एवं शिक्षण की बात हो तो भाषा के व्यावहारिक पहलुओं की चर्चा करने से पूर्व भाषा के सैद्धांतिक या व्याकरणिक पक्ष का ज्ञान होना या उसे जान लेना सबसे बुनियादी तथ्य है। भाषा एक ऐसी सार्थक व्याकरणिक व्यवस्था है जिसके अभाव में विचारों और तथ्यों के विनिमय की प्रक्रिया न तो पूर्ण हो सकती है और ना ही ज्ञान के सृजन का आधार निर्मित हो सकता है। भाषा मनुष्य की बौद्धिक चेतना का वागेन्द्रियों के माध्यम से सृजित प्रतीक व्यवस्था है। यह पूरे संसार को एक सूत्र में बांधने और उसे वैज्ञानिक रूप देने की एक बड़ी व्यवस्था है। प्रायः भाषा की बात करते समय हम भाषा के व्यावहारिक और व्याकरणिक पक्ष की ही केवल चर्चा करते हैं। जबकि भाषा से पूर्व उसके विभिन्न अवयवों, अंगों और शब्द-निर्माण तत्वों की चर्चा करना भूल जाते हैं। दरअसल "1975 के बाद जितनी भाषा शिक्षण विधियाँ प्रस्तावित की गईं उनका लक्ष्य एक ही था- संरचना केन्द्रित शिक्षण विधियों से हट कर भाषा के समाज संदर्भित जीवंत रूप को ग्रहण करने में अध्येता की कैसे सहायता की जाए" भारत में वाक, वाणी, लिपि, व्याकरण या टीका-टिप्पणी आदि के संदर्भ में तीसरी-चौथी सदी से अध्ययन होना प्रारंभ हो चुका था। भाषाविद आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा ने कहा है कि "भाषाविज्ञान का सीधा सा अर्थ है कि भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान ही भाषा विज्ञान कहलाएगा।"

इस संदर्भ में ये भी जानना जरूरी है कि भाषा चिंतन की परंपरा भारतीय है जो अत्यंत प्राचीन यानि ऋग्वैदिक काल से जुड़ती है। ***पाणिनी, पतंजलि, कात्यायन, भरतमुनि*** आदि ने भाषा के वैज्ञानिक पक्ष का विश्लेषण प्राचीन समय में ही शुरू कर दिया था। जबकि आधुनिक समय में भाषा अध्ययन पश्चिम में 18वीं सदी की देन है। पश्चिम में रेने देकार्त प्रथम भाषाविद के रूप में स्वीकार किए जाते रहे हैं। दूसरी ओर यह भारतीय संदर्भ में ऋग्वेद से जुड़कर भारतीयता केंद्रित ज्ञान के मूल को पुनःस्थापित करता है। यदि हमारे भाषा अध्ययन केंद्र पश्चिम न होकर भारतीय हो तो यह अत्यंत प्राचीन ज्ञान-अध्ययन का उत्स है। अतः भाषा चूंकि सीमित रहा नहीं इसलिए इसका अध्ययन भी अब भौगोलिक स्तर से जुड़ी विभिन्न शाखाओं के साथ करना ही हमारा लक्ष्य होगा। भारतीय परंपरा में पाणिनी, पतंजलि और कात्यायन को मुनित्रय की संज्ञा दी गई है जबकि पश्चिमी परंपरा में नॉम चोम्सकी, फिल्मोर या सस्यूर को भाषा के चिंतक या व्याख्याकार के रूप में मान्यता मिल पाई है। दोनों परम्पराओं में ये एक बड़ा अंतर है।

एक ओर जहां भाषा का व्यावहारिक पक्ष हमारे कौशल और तकनीकी पक्ष से संबंधित होने के साथ ही हमारे लिए रोजगारपरक है वहीं दूसरी ओर भाषा का व्याकरणिक पक्ष उसके निर्माण और संरचना पक्ष से जुड़ा होता है। यह भाषा निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ता है। हिंदी भाषा के पठन-पाठन के दौरान हम सभी प्रायः शब्द-निर्माण, अलंकार, समास और उपसर्गों तक सीमित रह जाते हैं। जबकि हिंदी भाषा के अध्ययन और शिक्षण के दौरान इसके कई विभेद उभरकर हमारे सामने आते हैं। इसलिए भाषा शिक्षण के साथ वैज्ञानिक पक्ष पर भी ध्यान देना उतना ही आवश्यक है। भाषा विज्ञान का अध्ययन करते समय मानव व्यवहार की भाषा-बारीकियों के बारे में जानकारी मिलती है। इससे भाषा से जुड़े अलग-अलग पहलुओं जैसे ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि के बारे में समझ विकसित होती है। भाषा के वैज्ञानिक पक्ष से भाषा के सही रूप को प्रयोग में लाने की समझ विकसित भी होती है जो शिक्षण और वैज्ञानिक पक्ष के लिए महत्वपूर्ण होती है। भाषा शिक्षण के उद्देश्य और अध्येताओं का प्रयोजन संबंधी आवश्यकताओं का संबंध शैक्षिक व्याकरण की न केवल प्रकृति निर्धारित करता है वरन् भाषा शिक्षण पद्धति को भी बहुत दूर तक नियंत्रित करता है।" जैसे कोई अध्येता भाषा को मातृभाषा के रूप में सीखना चाहता है या अन्यभाषा के रूप में? वह बोल-चाल के लिए सीखना चाहता है या पढ़ने-लिखने के लिए? इस प्रकार उद्देश्य और प्रयोजन भिन्न होने से शिक्षण विधि में भी अंतर आ जाता है।

जेनेवा में जन्में भाषा के वैज्ञानिक ***फर्दिनांद सस्यूर*** ने भाषा अध्ययन के दो पक्षों पर ध्यान दिलाया है। पहला समकालिक भाषा विज्ञान और दूसरा वर्णनात्मक पद्धति। ध्यातव्य है कि सस्यूर ने अपनी भाषा चिंतन के लिए ***पाणिनी के अष्टाध्यायी*** को अपना केंद्र माना है। अष्टाध्यायी में निहित भाषा के व्यवहृत रूप को ही सस्यूर ने अपने अध्ययन और विश्लेषण का केंद्र बनया है। आधुनिक भाषा विज्ञान में ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, शब्दविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान का समावेश होता है जिसे हिन्दी भाषा और शिक्षण की दृष्टि से प्रमुख माना जाता है।

भाषा विज्ञान के अंग :- भाषा को मातृभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है। भाषा ही व्यक्तित्व की वाहक है। अतः उसके अध्ययन हेतु भाषा विज्ञान के कुल चार अंग अभी तक माने गए हैं यथा ध्वनिविज्ञान, स्वनिमविज्ञान, रूप और रुपिमविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान आदि। भाषा विज्ञान की इन सभी शाखाओं में स्वर और ध्वनि आदि की उत्पत्ति, अक्षर निर्माण एवं शब्द निर्माण की पूरी प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। हिंदी भाषा के संबंध में इस पर विविध रूपों में अध्ययन और शिक्षण कार्य किया जाता रहा है। इसके साथ ही भाषा के अध्ययन में स्वर और **ध्वनि का विश्लेषण तीन आधार पर किया जाता है :** व्यतिरेकी अध्ययन यानि ध्वनि के निर्माण उत्पत्ति, उसके स्वनिम प्रयोग और उच्चारण व्यवस्था आदि का अध्ययन होता है।

प्रतिपूरक वितरण अध्ययन यानि ध्वनियों के विनिमय और बदलाव की प्रक्रिया पर ज़ोर दिया जाता है। स्वतंत्र वितरण अध्ययन अर्थात ध्वनि और रुपिम आदि के स्वतंत्र उपयोग पर ध्यान दिया जाता है जोकि भाषा की प्रथम इकाई मानी जाती है। इसी तरह रूप या रुपिम विज्ञान और वाक्य विज्ञान के साथ अर्थ विज्ञान भी भाषा अध्ययन के प्रमुख अंग है। वाक्य विज्ञान की संरचना और उसके निर्माण में ध्वनि, रूप फिर रुपिम विज्ञान को प्रमुख रूप में रखा जाता है। वाक्य भाषा की बुनियादी, प्रमुख और चरम इकाई है जिसमें शब्द, ध्वनि और अक्षर का अध्ययन प्रमुख माना जाता है। इस तरह पूरी संरचना को अध्ययन का केंद्रबिंदु माना जाता है। वाक्य में स्वर, ध्वनि, पद, पदक्रम और पदबंध की संरचना निहित होती है। डॉ भोलानाथ तिवारी ने पदक्रमों की व्यवस्था और संरचना को लेकर ध्यान दिलाया है कि "भारतीय आर्यभाषाओं में प्राचीन काल से ही प्रायः बहुप्रचलित पदक्रम प्रारंभ कर्ता तथा अंत में क्रिया होती है। कर्म आदि अन्य सभी पद बीच में आते हैं।" हिंदी में अन्य भाषाओं से भिन्न व्यवस्था रहती है इसीलिए अन्य भाषाओं की तुलना में यह अध्ययन एवं शिक्षण का प्रमुख भाग माना जाता है।

इस प्रकार अर्थविज्ञान भाषा अध्ययन का प्रमुख अंग है। अर्थ ही वाक्य की सार्थकता निर्मित करता है और भाषा का प्राणतत्व कहा जाता है। अर्थविज्ञान भाषा के अर्थ पक्ष पर ध्यान दिया जाता है ताकि भाषा में निहित संदेश को प्राप्त किया जा सके। "अर्थविज्ञान का एक मात्र कार्य है भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन।" दोनों ही भाषा चूंकि भाषा परिवर्तनशील है अतः उसका अर्थ भी परिवर्तनशील है। चार कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बदले वाणी की कहावत भारतीय संदर्भ में भाषा और अर्थ के संबंध में बखूबी व्याख्यायित करता है। चूंकि भाषा विज्ञान भाषिक व्यवस्थाओं का अध्ययन है इसलिए उसमें प्रतीकों के अध्ययन को प्रमुखता दी जाती है। यही प्रतीक अर्थन्वय की दृष्टि से उसकी सार्थकता को निर्धारित करते हैं।

तत्पश्चात, भाषा विज्ञान और हिंदी शिक्षण के मध्य भाषा के अंतर्संबंध को समझना सरल हो जाता है। भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान के अंतर्गत उसके विविध स्वरूप और क्षेत्र भी हैं जिनसे हम भाषा की प्रासंगिकता को समझ पाते हैं। भाषिक व्यवस्था का संबंध प्रायः भाषिक संरचना से होता है। इसमें शब्द, अक्षर और ध्वनि को अध्ययन और शिक्षण का प्रमुख आधार मानते हैं। साथ ही क्रम व्यवस्था को भी देखना पड़ता है जैसे अंग्रेजी में कर्ता, क्रिया और कर्म की संरचना होती है लेकिन हिंदी में ऐसे किसी क्रम के लिए बाध्यता नहीं होती है।

भाषा शिक्षण की प्रक्रिया:- इस प्रकार भाषा के वैज्ञानिक पक्ष के विश्लेषण के उपरांत हिन्दी भाषा शिक्षण की प्रक्रिया सरलतम हो जाती है। भाषा शिक्षण के कुल चार कौशल माने गए हैं : श्रवण, पठन, वाचन और लेखन। इन चारों को भाषा शिक्षण के लिए कौशल या शिक्षण का टूल्स माना जाता है। इसके उपरांत शिक्षण की विधियों का अनुकरण किया जाता है। इसमें पहला अनुकरण, दूसरा आगमन-निगमन विधि, तीसरा भाषा प्रयोगशाला पद्धति और चौथा व्यावहारिक प्रयोग विधि है। ध्यान देने की बात है कि हिन्दी भाषा शिक्षण का लक्ष्य क्या है? आखिर क्यों भाषा के वैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन करते हुए हिन्दी शिक्षण विधि आवश्यक है। इसके पीछे प्रमुख कारण है छात्रों की सृजन क्षमता और कौशल को पहचानना एवं उसे समुचित अवसर प्रदान करना। एक विधा के रूप में भाषा के वैज्ञानिक पक्ष को जानना उतना ही अनिवार्य है जितना हिन्दी भाषा को सीखना या शिक्षण के लिए प्रयोग में लाना। इसीलिए भाषा कौशल को आत्मसात करना भाषा को जीने के समान है और भाषा में दक्ष होना शिक्षण की पहली उपलब्धि है। "वस्तुतः भाषा किसी न किसी उद्देश्य या प्रयोजन के संदर्भ में सीखी या सिखाई जाती है। जब तक भाषा शिक्षण का उद्देश्य एवं प्रयोजन निर्धारित नहीं किया जाता तब तक उसकी स्वीकार्यता का मूल्यांकन भी संभव नहीं।" शिक्षण के संदर्भ में सर्वप्रमुख है सूक्ष्म शिक्षण पद्धति। तकनीक के उपयोग और गहन विश्लेषण करके शिक्षण कार्य करना ही सूक्ष्म पद्धति है।

उपरोक्त के अलावा एक शिक्षक छात्रों और भाषा के प्रशिक्षु को भाषा सिखाने के जितने भी अधिगम उपयोग में लाता है वे सभी शिक्षण पद्धतियाँ कहीं जाती हैं। संक्षेप में हिन्दी भाषा शिक्षण के लिए निम्नलिखित पद्धतियाँ प्रयुक्त की जा सकती हैं :

1. अनुकरण विधि
2. प्रत्यक्ष विधि

3. व्याकरण विधि
4. इकाई विधि
5. आगमन विधि
6. निगमन विधि
7. प्रयोजन विधि
8. प्रोजेक्ट विधि
9. समस्या समाधान विधि
10. प्रदर्शन विधि

इस प्रकार शिक्षण की विविध विधियों के अंतर्गत इसे हिन्दी शिक्षण के टूल्स के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है। भाषा के वैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन ही भाषा विज्ञान का अध्ययन है जिसमें अर्जित करने के साथ सीखने-सिखाने के लिए भाषाई कौशल का जानना भी आवश्यक है। भाषा विज्ञान संरचना का ज्ञान विश्लेषण करने के साथ ही तकनीकी और कौशल पक्ष का भी विश्लेषण करता है। यह संबंधित नियमों, पद्धतियों और नए निष्कर्षों को भी खोजता है। भारत में अत्यंत प्राचीन समय से ही भाषा के विकास और संवर्धन की परंपरा में पाणिनी, यास्क, पतंजलि, भर्ताहरि आदि आचार्यों का बुनियादी योगदान माना जाता है। लेकिन आधुनिक काल में भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं और अनुसंधानों का व्यवस्थित ज्ञानार्जन हमें भाषाविद सस्यूर के माध्यम से प्राप्त होता है। आधुनिक भाषा विज्ञान के तहत विभिन्न अनुप्रयोगो अर्थात विधाओं के अध्ययन को नवीनतम स्थान और महत्व प्राप्त हुआ। समाजभाषा विज्ञान, मनोभाषा विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, अनुवाद विज्ञान और शैली विज्ञान, कोश विज्ञान, भाषाशिक्षण आदि जैसी विधाओं को अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र माना जाने लगा। ऐसी विभिन्न अनुशासनों को विभिन्न संस्थानों में पठन-पाठन और अनुसंधान का भाग मानकर ज्ञान की नई शाखा के रूप में मान्यता मिलती है। यह भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपलब्धि है। इस तरह भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा का शिक्षण एवं अधिगम सबसे प्रमुख भूमिका रखते हैं।

****

संदर्भ ग्रंथ : -

1.संप्रेषणपरक हिंदी भाषा शिक्षण- वैष्ण नारंग, प्रकाश संस्थान, दिल्ली- 1996, पृष्ठ- 84
2.भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेंद्रनाथ शर्मा, दीप्ति शर्मा, पृ 176, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2015
3.भाषा विज्ञान: सैद्धांतिक चिंतन- रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 2004, पृष्ठ- 146
4.हिंदी भाषा, भोलानाथ तिवारी, पृ 191, किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद, 1992
5.अनुवाद का व्याकरण- सं. भोलानाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली- 2013, पृष्ठ- 43
6.अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की व्यावहारिक परख-गुर्रमकोंडा नीरजा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली- 2015, पृष्ठ- 60

दादूपंथी संतों के साहित्य में सामाजिक सांस्कृतिक चिंतन

शीतल प्रसाद महेन्द्रा
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय
बान्दरसिन्दरी (किशनगढ़) अजमेर
M 9887011119

भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था। विद्यार्थियों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद के सिद्धांतों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी पक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित थे।

शिक्षा प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केंद्रित किया। कर्म वही है जो बंधनों से मुक्त करे और विद्या वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाए। इसके अतिरिक्त जो भी कर्म हैं वह सब निपुणता देने वाले मात्र हैं। शिक्षा के इस संकल्प को भारतीय परंपरा में अंगीकृत कर तदनुरूप ही विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती है। जिस प्रकार विकास और प्रगति का संबंध है उसी प्रकार शिक्षा एवं ज्ञान का संबंध है एक के साथ भावना जुड़ी हुई है और एक के साथ अर्थ (धन) जुड़ा हुआ है। अर्थ प्रधान व्यवस्था में कृतज्ञता का भाव समाप्त हो जाता है हर चीज क्रय विक्रय के लिए उपलब्ध है। ज्ञान हमेशा कृतज्ञता के भाव से लिया जाता है, शिक्षा डिग्रियों के रूप में की जाती है। जहां पर कृतज्ञता का भाव आ जाता है वहाँ उत्तरदायित्व की भावना भी आ जाती है। इसलिए प्रत्येक शिक्षा के साथ नैतिकता जो कि यूनिवर्सल ह्यूमन वैल्यू के रूप में आवश्यक होती जा रही है।

दो तरह के गुरु हमारे जीवन को संवारते हैं एक लौकिक गुरु एवं दूसरे अध्यात्म गुरु। जहाँ लौकिक गुरु हमें आर्थिक रूप से जीवन संचालित करने का ज्ञान देते हैं वहीँ अध्यात्म गुरु इसमें नेतिकता का पोषण कर इसे जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संतुलन के साथ जीवन को पूर्णता की और ले जाते हैं यही भारतीय ज्ञान परंपरा की सफलता है।

हमारी ज्ञान परम्परा में वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुख थे। बोधायन, कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, वाराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, रामानंद, कबीर, दादू दयाल, गुरु नानक, नामदेव, रामदास, सुन्दरदास, रज्जब स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान परंपरा की समृधि हेतु अतुल्य योगदान दिया है। गुरुकुल शिक्षा में शिक्षार्थी अठारह विद्याओं – छः वेदांग, चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वेद), चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, शिल्पवेद), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र का अर्जन गुरु के निर्देशन में

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अनुष्ठानपूर्वक अभ्यास कर सम्पादन करते थे जिससे आजीविका निर्वहन में कोई परेशानी नहीं होती थी तथा प्रौढ़ावस्था तक आते-आते अपने विषय के निपुण ज्ञाता बन जाते थे। त्याग, वृत्तिसम्पन्न तथा धन की तृष्णा से परे आचार्य ही भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षक माना गया है। शिक्षा को व्यवसाय और धनार्जन का साधन नहीं माना जाता था। वायु पुराण में उल्लेख है कि गुरु रूपी तीर्थ से सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा अति समृद्धि थी तथा इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को समाहित करते हुए व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। जब सारा विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता था तब सम्पूर्ण भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानव को पशुता से मुक्त कर, श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त कर संपूर्ण मानव बनाते थे। दादू साहब की बानी भी जीवन में विचार साधना और सादगी के समन्वय की वजह से मानवीयता की पक्षधर है, इसलिए साहित्य और समाज की निधि है। यही कारण है कि भक्तिकाल के संत साहित्य को देश के सांस्कृतिक आंदोलन की शुरुआत के रूप में देखा जाता है और दादू साहब को उस आंदोलन के समर्पित योद्धा के रूप में याद किया जाता है। संतो की सृष्टि बड़ी व्यापक रही है। उन्होंने भक्ति, धर्म एवं समाज आदि को संकुचित दायरे से बाहर निकालने का व्यापक प्रयास किया था। मानव एवं मानवता के प्रति संतों ने एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाया। धर्म को उन्होंने संकुचित दायरे से बाहर निकाला। संतों ने मानव धर्म की संकल्पना को स्वीकारते हुए हर एक धर्म का आदर किया। उसमें निहित अच्छाइयों को स्वीकार किया और उनका व्यापक प्रचार-प्रसार किया। उनका धर्म मानवता का धर्म था जो संसार के प्रत्येक प्राणी के कल्याण का अभिलाषी है। वह क्षुद्रताओं एवं संकीर्णताओं से परे है। धर्म शब्द का अर्थ होता है- धारण करना। कहा भी गया है- 'धारयतीति धर्मः। 'अर्थात् जो धारण करे वही धर्म है। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि- ''धर्म एवं हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।'' अर्थात् जो व्यक्ति धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता है किन्तु जो धर्म का नाश करता है, धर्म भी उसका नाश कर देता है। संत साहित्य में गुरु महिमा, अहिंसा, सत्य, सदाचार, समर्पण आदि धर्म के सकारात्मक पक्ष मिलते हैं जो कि संतों के धर्म के व्यापक फलक का बोध कराते हैं।

संतकाव्य में लोक समाज के अनुकूल कवि व्यवहार की शुरुआत संत कबीर से होती है। स्वामी रामानंद से शिष्यत्व पाने के बाद उनकी काव्य संवेदना में मानवीय करुणा का स्वर प्रमुख हो जाता है। शुरुआती अक्खड़पन खरी-खोटी लताड़-फटकार के तेवर में कमी आती है। इसी कड़ी में संत दादू दयाल का भी नाम है। दादू साहब का पंथ भी बना पर दादू साहब की कविताई का रंग संत कबीर के रंगों-गूंजों से जैसा ही है। संत दादू दयाल कबीर के लगभग डेढ़ सौ बरस बाद हुए पर उनकी वाणी में प्रेम भाव का निरूपण अधिक सरस और गंभीर है। कबीर के समान खंडन और वाद-विवाद में इन्हें रुचि नहीं थी। दादू साहब की चिंता भी समाज में व्याप्त, छुआछूत, भेदभाव और पाखंडपरके जाति-द्वेष मिटाकर मनुष्य को मनुजवत् व्यवहार के लिए प्रेरित करने की ही थी। इसके लिए उन्होंने प्रेम, करुणा और सहानुभूति का रास्ता अपनाया ।

दादू साहित्य की मूल भावना समरसता की है, यह समरसता जाति -वर्ण की है, धर्म-पंथ की है, ज्ञान-भक्ति की है, गृहस्थ-वैराग्य की है| दादू वाणी अतिचारों के विरुद्ध है| दादू का जीवन-दर्शन ज्ञान व अनुभव दोनों पर सामान रूप से आधारित रहा है| उनका उद्देश्य एक ऐसे परिवेश का निर्माण करना था जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक ऊँचाई को प्राप्त कर सके| इसके लिए समता पर आधारित समाज का निर्माण बुनियादी आवश्यकता थी| इस प्रकार दादू दयाल की वाणी में सामाजिक -सांस्कृतिक चिंतन को विश्लेषित करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वे 'सतराम' के उपासक हैं, जिस तत्त्व में सत का वास नहीं हैं वो दादू दयाल को स्वीकृत नहीं है| इसी तर्क के आधार पर वे उन सभी सामजिक वैषम्यमूलक प्रवृतियों का खंडन करते हैं जिनकी आधारभूमि असत है|

"दादू दोन्यों भरम हैं, हिंदू तुरक गँवार
जे दुहुवाँ तैं रहित है, सो गह तत्त्व विचार।।"

दादू साहब के बारे में कहा जाता है कि वे धुनिया थे। बंगाल के बाउल सम्प्रेदाय से भी इनका संबंध माना जाता है। असल में दादू साहब उन्हीं परंपराओं में अपने को मानते थे, जैसा कि उल्लेख उनके दोहों में मिलता है :

नामदेव कबीर जुलाहो जन रैदास तिरै।
दादू बेगि बार नहिं लागे हरि सौ सबै सरै।।

वारकरी सम्प्रदाय के समर्थ संत कवि नामदेव अपने जीवन के अंतिम दो दशकों तक उत्तरी भारत में विचरण करते हुए भक्ति की आधार भूमि से मानवीय प्रेम और सद्भावना का प्रसार करते रहे। इसलिए कबीर रैदास के साथ दादू साहब ने भी दो सौ बरस बाद, उनके अवदान का सम्मानपूर्वक स्मरण किया है।

अहमदाबाद में सन 1544 में जन्मे दादू दयाल जी के संदर्भ में वैसी ही जनश्रुति प्रचलित है जैसी कि संत कबीर के जन्म की मानी जाती है। यही कि दादूजी एक शिशु के रूप में साबरमती नदी में बहते हुए लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण या धुनिया को मिले। कुछ लोग इन्हें अन्य जाति का भी बताते हैं। तत्कालीन अमानवीय हालात की चिंता इन्हें कबीर मतानुयायी संत बुड्ढन के पास ले आयी। इनकी बानी में कबीर का प्रभाव है तो इसका कारण संत बुड्ढन का संग माना जा सकता है दादू जी कहते है -

घी दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़ै ते और॥
यह मसीत यह देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतर सेवा बंदगी, बाहिर काहे जाए॥

(दूध की हर बूंद में घी है यानी जीने की शक्ति, मैं बकवास भी कर रहा हूं तो इसका मंथन कर देखो जीवन रस मिलेगा। मुझे यह चेतना यानी मसनी और देह परब्रह्मi (सतगुरु) से प्राप्त हुआ, सो मैं कहीं भी मतलब अपने लिए सेवा पूजा-अर्चना, मनन-चिंतन कर लेता हूं, आप भी करें, बाहर यानी देवालय ही क्यों जरूरी है?) इसी तरह दादू साहब कहते हैं –

केते पारखि पचि मुए, कीमति कही न जाई।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ॥
जब मन लागे राम सों, अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यौं, ऐसै रहै समाइ॥

(गूंगे के गुड़ यानी प्रभु के प्रसाद का मूल्य आंकने में अनेक पारखी माथापच्ची करके हैरान ही हुए, अरे जब राम की लगन है तो तन कर घमंड से क्या इतराना है। मतलब मोल-तोल क्यों? तुझे या, यह गूंगा (राम) तुझे क्या मोल बतायेगा? तुझे तो पानी में नमक के स्वाद जैसा विनम्र और स्पष्ट होना चाहिए।)संत कबीर की तरह दादू साहब ने अल्पायु से दर-दूर तक पर्यटन किया। आमेर मारवाड़, बीकानेर, बंगाल तक और जीवन के अंतिम समय 1592 में नरैना जिला जयपुर में रम गये। यहीं एक वर्ष बाद इन्होंने शरीर छोड़ा। दादू साहब ने अपना पंथ स्थापित करते हुए इसका उद्देश्य भी स्पष्ट किया-

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक आधारा।
वाद-विवाद काहू सौं नाहीं मैं हूं जग थें न्यारा।

इनके जीवन काल में ही संत प्रवृत्ति से आकर्षित होकर बहुत शिष्य बन

चुके थे। इनके मन में एक संप्रदाय को आरंभ करने का ख्याल आया। इन्होंने सांभर क्षेत्र में "परब्रह्म संप्रदाय" की स्थापना की। इनके जीवन काल तक तो यह संप्रदाय इसी नाम से चलती रही। परंतु इनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने इस संप्रदाय का नाम बदलकर "**दादू पंथ**" रख दिया। उसके बाद से संपूर्ण संप्रदाय दादूपंथी के नाम से विख्यात हुआ। आरंभ में इनके शिष्यों की संख्या 152 थी। यह 152 शिष्य इनके संप्रदाय के अटूट स्तंभ थे। इन शिष्यों ने इस संप्रदाय को पंजाब, हरियाणा,राजस्थान आदि राज्यों तक प्रचार प्रसार किया।

दादू ने तत्कालीन समाज व्यवस्था में उत्पन्न जाति, पंथ, संप्रदाय आदि के विभेदों को समूल नष्ट करने के क्रांतिकारी प्रयत्न किए, जिसका व्यवहारिक रूप उनका दादू पंथ हैं| दादू पंथ समतामूलक समाज की अद्भुत मिसाल है, इसमें रज्जब(मुसलमान) हैं, बड़े सुन्दरदास(क्षत्रिय) है, छोटे सुन्दरदास (वैश्य) है, स्वामी गरीबदास (ब्राह्मण), स्वामी जगन्नाथ (कायस्थ) हैं, स्वामी प्रागजन (दलित) हैं| सभी संकीर्णताओं से परे हैं दादू पंथ, इसी भाँति का समाज भी दादू चाहते हैं| यहाँ तक कि दादू ने आराधना के लिए गृहस्थ-वैराग्य जैसा भेद भी स्वीकार नहीं किया। समाज को जागरूक करने वाली दादू जी की प्रमुख काव्य रचनाओं में साखी, पद्य, हरडेवानी, अंगवधू शामिल है।

प्रमुख उपसम्प्रदाय

कालान्तर में दादू पंथ के पाँच प्रमुख उपसम्प्रदाय निर्मित हुए :-

•**खालसा (खालसा गरीबदास जी** की आचार्य परम्परा से सम्बद्ध साधु ।)

•**विरक्त तपस्वी (विरक्त** - रमते फिरते गृहस्थियों को दादू धर्म का उपदेश देने वाले साधु ।)

•**उतराधें या स्थानधारी (उत्तरादे व स्थानधारी** -जो राजस्थान को छोडकर उत्तरी भारत में चले गये।)

•**खाकी (खाकी** - जो शरीर पर भस्म लगाते है व जटा रखते है ।)

नागा (नागा शाखा के प्रवर्तक सुंदरदास थे, ये राज्य की सुरक्षा के लिए युद्ध में भाग लेते थे, इसी नागा संप्रदाय के संतों ने जयपुर राज्य के **सवाई जयसिंह** व जोधपुर के **राजा मानसिंह** की सहायता की थी ।)**जनश्रुति के अनुसार** दादू जी की भेंट सम्राट अकबर से हुई बताते हैं । यह भेंट फतेहपुर सीकरी हुई जो कि उस समय सम्राट अकबर की राजधानी थी। वहीं दादू जी के शिष्य माधवदास जी के माध्यम से राजा भगवन्तदास से कहकर अकबर ने दादू जी को निमन्त्राण भेजा। जब दादू जी अकबर के दरबार में पहुँचे तो अकबर अपने दरबारियों के साथ बैठा था। पर अपने बैठने का प्रबन्ध न देखकर दादू जी ने क्षणभर विचार किया ही था कि अकबर ने कहा कि हम तुरन्त एक साथ कुछ बातों का उत्तार चाहते हैं। पहला प्रश्न था-

"खुदा की जात क्या है?"
"उसका अंग क्या है?"
"उसका वजूद कैसा है?"
"उसका रंग कैसा है?"

तब दादू जी ने उत्तार दिया-

इश्क खुदा की जात है, इश्क खुदा का रंग।
इश्क खुदा-इ-वजूद है, इश्क खुदा का अंग॥

यह उत्तार सुनकर अकबर ने तुरन्त खड़े होकर क्षमा याचना की, उन्हें उचित स्थान दिया। अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उसने चालीस दिनों तक दादू जी के साथ सत्संग किया। इस क्रम में अकबर द्वारा यह प्रश्न करने पर कि तीन गुणों और पाँच भूतों की किस क्रम से रचना हुई? अर्थात् कौन पहले और कौन बाद में बना? दादू जी ने उत्तार दिया-

एक शब्द सब कुछ कियौ, ऐसा समरथ सोय।
आगे पीछे वो करे, जे बल-हीणा होय॥

दादू जी की अमृतमयी वाणी के प्रभाव में अकबर ने 'गोहत्या बन्दी' का फरमान जारी किया और उनकी प्रशस्ति में उन्हें अल्लाह और खुदा का नूर जशहिर किया-

दादू नूर अल्लाह है, दादू नूर खुदाय।
दादू मेरा पीव है, कहै अकबर शाह॥

अकबर बादशाह का सत्संग समाप्त कर महाराज दादूदयाल जी सीकरी से चलकर दौसा कस्बे में पहुँचे। दौसा से कुछ दूरी पर एक सुन्दर सरोवर के तट पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे दादू जी विश्राम कर रहे थे। वह वृक्ष सूखा था। महाराज की दृष्टि उस पर पड़ते ही वह हरा हो गया। इस घटना को सुनकर परमानन्दजी, जो कि छोटे सुन्दरदास जी के पिता थे, पुत्र को साथ लेकर दादू जी से मिलने आये। दादू जी ने सुन्दरदास के सिर पर हाथ रखा। सुन्दरदास दादू जी के शिष्य हो गये। इन्होंने बाद में सुन्दर विलास, ज्ञान समुद्र आदि ग्रन्थों की रचना की और बहुत ख्याति अर्जित की।

दादूपंथ के सत्संग स्थल **अलख दरीबा** कहलाते है। दादू परोपकारिता का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करते हैं जिसमें वे उस मृत्यु को श्रेष्ठ मानते हैं जिसके बाद शरीर का पशु-पक्षी भक्षण कर सकें। दादू का यह पद्य उनके संपूर्ण चिंतन का साररूप है।

"हरि भज सफल जीवणा, पर उपकार समाए।
दादू मरणा तहां भला, जहां पशु पक्षी खाए।"

दादूजी को **दूसरा शंकराचार्य** कहा जाता है वहीं दादूजी को '**राजस्थान की कबीर**' भी कहा जाता है ।

गुरु की महत्ता को संत दादूदयाल भी स्वीकारते हैं। वे कहते हैं कि सतगुरु मुझे सहज में ही मिले गए और मुझ पर इतनी कृपा की, कि मैं निर्धन प्राणी उनकी कृपा से धनवान बन गया अर्थात् राम नाम रूपी बहुमूल्य धन की प्राप्ति हो गई। उनकी कृपा से ही अंधकार नष्ट हुआ और ज्ञान रूपी दीपक प्रदीप्त हो पाया है। दादूदयाल कहते हैं कि यह तो सदगुरु की ही कृपा है कि जिससे मुझे दयाल (दयालु ईश्वर) के दर्शन हो पाये हैं-

"दादू देषू दयाल की, गुरु दिषाई बाट।
ताला कूंची लाई करि, षोले सबै कपाट।।"

संत दादूदयाल कहते हैं गुरु, ईश्वर प्राप्ति का वह सरल-सहज मार्ग बता सकते हैं जो वेद कुरान आदि ग्रंथों में भी वर्णित नहीं है। अर्थात् केवल शास्त्रों का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं, सदगुरु की कृपा भी अनिवार्य है। दादूदयाल का कहना है कि सदगुरु की कथनी को जो शिष्य अपने जीवन में नहीं उतारता है तो समझिए की वह काल के पास जा रहा है और जो साधक सच्चे दिल से स्वीकारता है वह बिना किसी भय के अमर पद को प्राप्त करता है ।

दादू जी हिंसा के प्रबल विरोधी थे। वे संसार के प्रत्येक पशु-प्राणी और मानव मात्र के प्रति प्रेम पूर्ण अहिंसक व्यवहार के पक्षधर थे। वे किसी को भी मन-वचन-कर्म से पीड़ा नहीं पहुंचाने का संदेश देते हैं। संत दादूदयाल का मत है कि -

"दादू कोई काहू जीव की, करै आतमा घात।
साच कहौ संसै नहीं, ते प्राणी दोजग जात।।"

सभी संतों ने ईश्वर प्राप्ति एवं सफल जीवन जीने लिए सत्संगति की महत्ता को स्वीकारा है। लोक की मान्यता है कि व्यक्ति जिसकी संगति में रहता है उसके गुण अवश्य ही ग्रहण करता है। कहा भी गया है -

"कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए तैसो ही फल दीन।।"

दादूदयाल भी कहते हैं कि जहाँ संत जन हैं अर्थात् सज्जनों की

संगति है, वहाँ ईश्वर का वास होता है। सत्संगति से ही ईश्वर की प्राप्ति संभव हैं। दादू की दृष्टि में सच्चा सत्संग वही है जिसमें व्यक्ति सांसारिक विषय-वासनाओं से मुक्त होकर ईश्वर की ओर गमन करता है। वे कहते हैं -

"दादू भाव भगति उपजै नहीं, साहिब का परसंग।
विषै विकार छूटै नहीं, सो कैसा सत्संग।।"

व्यक्ति जिसकी संगति में रहता है उसका गुण अवश्य ग्रहण करता है। इसी कारण सभी संतों ने सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन किया है। संत दाददयाल ने मन रूपी माला को फेरने पर बल दिया। उनका मानना था कि ईश्वर के समस्त स्थान तो हमारे घट में ही हैं इसलिए ईश्वर का वास भी हमारे मन में ही है अतः बाहरी भटकाव की अपेक्षा मनः परिष्कार का कार्य करना चाहिए, वे कहते हैं-

"दादू मंझे चेला, मंझि गुरु, मंझे ही उपदेश।
बाहरि ढूंढे बावरे, जहां बँधाये केस।।"

***

"मनका मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केस।
दादू विषै विकार सब, सतगुरु के उपेदस।।"

संत दाददयाल का कहना था कि जिस व्यक्ति का मन रूपी दर्पण उज्ज्वल है, वही व्यक्ति साहिब का दीदार कर सकता है। यदि मन मैला हो तो कितने ही सांसारिक प्रयास किए जाएं ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं है। उनका मानना था कि यदि मन रूपी हाथी एक बार अंकुश हीन हो जाए तो फिर उसे बंधन में बाँधना कठिन है। सैकड़ों महावत मिलकर भी उसे बाँधने में सक्षम नहीं हो पाते हैं इसलिए मन पर नियंत्रण रखना बहुत आवश्यक है। उनका मानना है कि जब तक मन के विकार नष्ट नहीं हो जाते तब तक ध्यान लगाने से कोई लाभ नहीं। वे कहते हैं -

"दादू ध्यान धरै का होत है, जे मन नहिं निर्मल होय।
तो बग ही सब उद्धरै, जे इहि, विधि सीझे कोय।।"

संतों ने समाज को भी यही संदेश दिया कि हमें जात-पाँत में विश्वास किए बिना सभी के साथ समभाव से व्यवहार करना चाहिए। दादू एक मात्र ईश्वर तत्व में विश्वास करते हैं और पूरे मन, वचन और कर्म से उसकी ही आराधना करते हैं-

"दादू एक सगा संसार में, जिनि हम सिरजे सोई।
मनसा वाचा क्रमनां, और न दूजा कोई।।"

संत दाददयाल स्वार्थी और निस्वार्थ की चर्चा करते हुए बताते हैं कि एक मात्र राम या फिर साधु पुरुष ही संसार में ऐसे हैं जो अपना मन निर्मल रखते हुए निस्वार्थ एवं निष्काम प्रेम से बंधे होते हैं -

"दादू आप सवारथ सब सगै, प्राण सनेही नांहि।
प्राण सनेही राम है, कै साधू कलि मांहि।।"

ईश्वर के मार्ग पर बढ़ने से पहले जो कर्म सांसारिक भौगादि साधक को प्रिय लगते थे उन्हीं सांसारिक भोगादि से मानव का मोह घटता जाता है जब वह ईश्वर के पथ पर अग्रसर होता है-

"जब विरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे काम।।"

संत दाददयाल को लगता है कि इस संसार में राम नाम के बिना जो कुछ भी है वह सब व्यर्थ का है। संसार में सुख-दुख तो आते-जाते रहते हैं किंतु राम नाम शाश्वत है और जो इस शाश्वत सत्य को स्वीकारता है वह भवसागर से पार जाता है। जो सहज रूप से उस राम की शरण में जाता है उसके विकार स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं और उसका मन निर्मल हो जाता है। दादूदयाल कहते हैं कि-

"दादू राम नाम निज वोषदि, काटै कोटि विकार।
विषम व्याधि थैं ऊबरै, काया कंचन सार।।"

राम के चरणों में समर्पित होते हुए दादूदयाल तो इतना तक कह देते हैं कि-

"दादू कहतां सुनतां राम कहि, लेतां देतां राम।
षातां पीतां राम कहि, आतम कवल विश्राम।।"

विभिन्न उदाहरणों का सहारा लेकर भी संत दाददयाल ईश्वर के प्रति अपने सच्चे समर्पण को अभिव्यक्ति देते हैं। वे कहते हैं कि मछली एक क्षण के लिए भी पानी के बिना नहीं रह सकती ठीक वैसे ही वे हर समय प्रभु भक्ति में लीन रहना चाहते हैं। जैसे पतंगा दीपक को ही सर्वस्व मानकर उसमें गिर जाता है, ठीक वैसे ही दादू ब्रह्म के ध्यान में लीन रहना चाहते हैं। समर्पण की इस श्रेष्ठ दशा में पहुँचने पर उन्हें सारी दृष्टि ही राममय दिखती है। वे कहते हैं -

"तनही राम मनही रांम, राम रिदै रमि राषी लै।
मनसा राम सकल परिपूरण, सहजि सदा रष चाषी ले।।
नैना राम वैना राम, रसनां राम संभारी लै।
श्रवणा राम सनमुष राम, रनिता राम बिचारी लै।।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संतों के यहाँ समर्पण प्रमुख है। वे अपने आराध्य के चिंतन स्मरण को ही सब कुछ मानते हैं। उसके बिना यह सारा संसार उनके लिए व्यर्थ है।संत साहित्य जीवन को व्यापकता से देखने का साहित्य है। वह यह मानता है कि धर्म के मार्ग पर चलने वाले साधक को जब गुरुकृपा रूपी अमृत तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है तो वह निश्चित ही ईश्वर को प्राप्त करता है। अहिंसा का आचरण उसके मन में दया के भाव संचरित करता है जिससे कि ईश्वर के प्रति उसका समर्पण बढ़ता है। यही पूर्ण समर्पण साधक को ईश्वर की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संतों का धर्म व्यापक था। वह विविध संकीर्णताओं और आडम्बरों से पूरी तरह मुक्त था।

****

संदर्भ :-

1. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 124
2. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 5
3. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 8
4. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 72
5. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 89
6. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 168
7. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 21
8. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 3
9. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 115
10. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 9
11. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 9
12. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 94
13. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 161
14. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 14
15. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 40
16. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 22
17. दादूग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 23

वर्ष-01 अंक -03 जुलाई- सितम्बर-2023 ISSN– 2993-46484

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

https://shodhutkarsh.com/

प्रधान संपादक -डॉ. एन.पी.प्रजापति त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका - शोध उत्कर्ष